अमिट कालरेखा

आचार्य शंकर की प्रव्रज्या के पच्चीस सौ वर्ष
(अर्वाचीन मत खण्डन)

परमेश्वरनाथ मिश्र

अमिट कालरेखा

आचार्य शङ्कर की प्रव्रज्या के पच्चीस सौ वर्ष

(अर्वाचीन मत खण्डन)

श्री अरुणकुमार उपाध्याय, पुलिस महानिरीक्षक
एवं वेदज्ञ को सप्रेम —
परमेश्वरनाथ मिश्र
28.11.2003

लेखक

श्री परमेश्वरनाथ मिश्र 'अधिवक्ता'

उच्च न्यायालय, कलकत्ता

एवं

उच्चतम न्यायालय, भारत

अखिल भारतीय पीठपरिषद् बिहार प्रदेश, पटना

द्वारा

शङ्कराचार्य परम्परा एवं संस्कृति रक्षक परिषद् के लिये प्रकाशित

इस पुनर्मुद्रित संस्करण के विक्रय से प्राप्त सम्पूर्ण लाभ भगवत्पाद आद्यशङ्कराचार्य के संन्यास की पच्चीससौवीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में 26 नवम्बर से 28 नवम्बर 2001 ई० सन् तक आयोजित पटना के समारोह से सम्बन्धित निधि में जायेगा।

प्रथम संस्करण : विक्रम संवत् 2057 तुल्य ईसवी सन् 2000

पुनर्मुद्रण : विक्रम संवत् 2058 तुल्य ईसवी सन् 2001

अमिट कालरेखा

आचार्य शङ्कर की प्रव्रज्या के पच्चीस सौ वर्ष
(अर्वाचीन मत खण्डन)

लेखक

श्री परमेश्वरनाथ मिश्र 'अधिवक्ता'

अखिल भारतीय पीठपरिषद् बिहार प्रदेश, पटना

द्वारा

शङ्कराचार्य परम्परा एवं संस्कृति रक्षक परिषद् के लिये प्रकाशित

प्रथमावृत्ति : 1000

पुनरावृत्ति : 1000

पैंतीस रुपये मात्र

मुद्रक :

लोकवाणी प्रिंटिंग प्रेस

डी० एन० दास लेन, लंगरटोली

पटना-800 004

दूरभाष : (0612) 674928

पुनर्मुद्रित संस्करण के सम्बन्ध में स्वकथ्य

मेरी इस पुस्तक **अमिट कालरेखा** (अर्वाचीन मत खण्डन) का विद्वत् समाज द्वारा व्यापक पैमाने पर सम्यक् समादर किया गया जिससे मुझे काफी बल मिला। अनेक दिग्गज विद्वानों ने मेरे नवीन अनुसंधानों के आलोक में भगवत्पाद आद्यशङ्कराचार्य की पारम्परिक मान्य तिथि को अपनी उदारता एवं विशाल हृदयता का परिचय देते हुए स्वीकार कर लिया। सम्पूर्ण भारतवर्ष में लगभग 700 विद्वानों को समीक्षार्थ यह पुस्तक भेजी गयी थी जिसमें से मात्र दो महानुभावों की ओर से प्रतिकूल प्रतिक्रियाएँ प्राप्त हुईं।

विद्वानों एवं भारतीय जनमानस की व्यापक पैमाने पर इस पुस्तक की माँग देखते हुए अखिल भारतीय पीठपरिषद् बिहार प्रदेश, पटना के महामन्त्री श्री अशोक कुमार सिंह जी ने इसको पुनर्मुद्रित करने का प्रस्ताव मेरे समक्ष रखा। पुनर्मुद्रण हेतु आने वाले आर्थिक व्यय वहन करने की उन्होंने अपनी भावना व्यक्त की। श्री अशोक कुमार सिंह जी उन कुछ गिने चुने लोगों में हैं जो इन दिनों तन-मन-धन से राष्ट्र रक्षण के कार्य में संलग्न हैं। भगवत्पाद आद्यशङ्कराचार्य के संन्यास की पंचविंश-शती समारोह का 26 नवम्बर 2001 से 28 नवम्बर 2001 तक जो बिहार की राजधानी पटना में आयोजित किया जा रहा है उसके दो प्रमुख स्तम्भों में से एक हैं श्री सिंह जी। समारोह आयोजन के दूसरे प्रमुख स्तम्भ हैं परमादरणीय आचार्य डॉ० जयमन्त जी मिश्र, पूर्व कुलपति, का० सिं० दरभंगा सं० विश्वविद्यालय, दरभंगा।

श्री सिंह जी के प्रस्ताव को मैंने स्वीकृति दी अपनी इस घोषणा के साथ कि इस पुनर्मुद्रित संस्करण के विक्रय से जो लाभ प्राप्त होगा वह भगवत्पाद आद्यशङ्कराचार्य के संन्यास की पंचविंशशती समारोह निधि में मेरी ओर से दे दिया जायेगा।

आशा करता हूँ कि मेरी इस पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् डॉ० दामोदर सिंहल, पी० एच० डी० (लंदन), डी० लिट्० (क्वीन्स लैण्ड), प्रोफेसर इतिहास विभाग,

क्वीन्सलैण्ड यूनिवर्सिटी के विचारों में भी परिवर्तन आयेगा जिन्होंने अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति और विश्व-सम्पर्क' के दूसरे खण्ड में पृष्ठ 268 पर लिखा है कि "इस ऐतिहासिक सम्भावना को तुरन्त अमान्य नहीं किया जा सकता कि शङ्कर ने इस्लामी विचारधारा के कारण उपनिषदों के सिद्धान्त पुनः स्थापित किये, क्योंकि उनका जन्म मालावार के एक ग्राम में 686 ई० के लगभग हुआ था, जहाँ अरब के सौदागर इस्लामी विचारों को लेकर आये थे।"

इस पुनर्मुद्रित संस्करण में प्रथम संस्करण के मुद्रण प्रमाद को दूर कर 'लेखक का संक्षिप्त परिचय' प्रकाशकीय के शीघ्र पश्चात् तथा इस पुस्तक पर प्राप्त विद्वानों के पत्रों एवं मेरे द्वारा अथवा मेरी ओर से दो महानुभावों को दिये गये पत्रोत्तरों को परिशिष्ट-7 के रूप में प्रकाशित किया गया है जिन्हें अतिरिक्त योजक समझा जाना चाहिए।

इस पुस्तक के प्रत्युत्तर में लिखी गई एक पुस्तक के खण्डन में मेरी इस श्रृंखला की दूसरी पुस्तक अमिट कालरेखा (वितण्डावादी मत खण्डन) भी प्रकाशित हो चुकी है जो कि 325 + 16 पृष्ठों की पुस्तक है। विद्वत् जगत में उक्त पुस्तक का भी जोरदार स्वागत किया गया है।

मुझे पूरा विश्वास है कि 26 नवम्बर 2001 ई० के दिन पटना के गांधी मैदान में आचार्य शङ्कर के संन्यास की 2500वीं वर्षगांठ पर आयोजित समारोह में भारी संख्या में भाग लेकर हमारे देशवासी इस मान्यता को नकारते हुए कि 'एकेश्वरवाद' की अवधारणा उन्होंने किसी अन्य धर्म के संस्थापक से ग्रहण किया उनके परम्परागत मान्य आविर्भाव काल युधिष्ठिर शक सम्वत् 2631 वैशाख शुक्ल पञ्चमी तुल्य ई० पू० 507 तथा कैलाश-गमन काल युधिष्ठिर शक संवत् 2663 कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा तुल्य ई० पू० 475 को अभेद्य, अकाट्य मान ऐतिह्य प्रमाणों के आलोक में निःसन्देह स्वीकार कर राष्ट्र रक्षण के कार्य में जुट जायेंगे।

परमेश्वरनाथ मिश्र

19 सितम्बर 2001 खिष्टाब्द

अध्यक्ष
श्री शङ्कराचार्य परम्परा एवं संस्कृति रक्षक परिषद्
वृन्दावन काम्पलेक्स, अरुण एपार्टमेण्ट
4, स्टेशन रोड, लिलुआ, हावड़ा-711204
दूरभाष : (033) 6456669

प्रथम संस्करण
का
प्रकाशकीय

आज से लगभग 12 वर्ष पूर्व सन् 1988 ई० में अचानक महामण्डलेश्वर स्वामी काशिकानन्द गिरि जी के एक लेख को आधार बनाकर कुछ लोगों ने आदिशङ्कराचार्य के तथाकथित आविर्भाव काल का द्वादश शताब्दी वर्ष मनाना प्रारम्भ कर दिया। इस अवसर पर उन्होंने एक पुस्तक "भारतीय अस्मिता और राष्ट्रीय चेतना के आधार जगद्‌गुरु शङ्कराचार्य" का प्रकाशन भी किया। इसी पुस्तक में स्वामी काशिकानन्द जी का उपर्युक्त लेख प्रकाशित हुआ, जिसमें महात्मा काशिकानन्द जी ने कुल मिलाकर सिद्ध करना चाहा था कि आदिशङ्कराचार्य का काल 788 ई० ही है। महामण्डलेश्वर स्वामी काशिकानन्द जी ने तथाकथित आधुनिक अन्वेषकों के कुछ उथले और दुरभिप्राययुक्त अन्वेषणों को ही अनेक पुष्ट-प्रमाणों और श्रीमदादिशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित चारों पीठों की शिष्य पराम्पराओं को नजर-अन्दाज करते हुए स्वीकार कर लिया था, संभवतः ऐसा उनके कुछ नया करने के उत्साह अथवा साधुपुरुषोचित हृदय-सारल्य के कारण हुआ होगा।

चारों शङ्कराचार्य पीठों की प्राचीन परम्पराओं के अनुसार आदिशङ्कराचार्य जी ने युधिष्ठिर शक संवत् 2639 कार्तिक शुक्ल एकादशी के दिन संन्यास ग्रहण किया था अतः वि० सं० 2057 उनके संन्यास ग्रहण का 2500वाँ वर्ष है।

इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए "श्री शङ्कराचार्य परम्परा एवं संस्कृति रक्षक परिषद्" ने आदिशङ्कराचार्य के आविर्भाव काल के सम्बन्ध में कुछ विशिष्ट गवेषणा

कर एक ग्रन्थ लिखने का अनुरोध प्राचीन एवं आधुनिक इतिहास के विद्वानों से किया। प्रसन्नता की बात है कि इसी क्रम में परिषद् के अध्यक्ष एवं इतिहास, दर्शन के साथ ही साथ विधिशास्त्र के मूर्धन्य विद्वान् श्री परमेश्वरनाथ मिश्र ने व्यापक अनुसन्धान कर एक बृहद् ग्रन्थ का सृजन किया। परन्तु विधि व्यवसाय-गत व्यस्तताओं के कारण अभी तक वे उक्त ग्रन्थ का पुनरीक्षण नहीं कर सके हैं, अतः परिषद् ने उनके उस विशद ग्रन्थ के एक अंश को जो कि मुख्यतः महामण्डलेश्वर स्वामी काशिकानन्द जी द्वारा प्रतिपादित आधारभूत तथ्यों के खण्डन में लिखा गया है, पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया।

परिषद् का उद्देश्य है कि श्रीमदादिशङ्कराचार्य जैसे महान् व्यक्तित्व के काल के बारे में फैली भ्रामक धारणाओं का अपनोदन किया जाय और एक सर्वमान्य निष्कर्ष पाया जाय।

अतः इस पुस्तक के माध्यम से हमारी इस विषय में रुचि रखने वाले विद्वानों से प्रार्थना है कि वे ठोस प्रमाणों पर आधारित अपनी विप्रतिपत्ति निम्न पते पर शीघ्र भेजें, जिससे कि आगामी प्रकाशन में उनके विचारों को सम्यक् स्थान दिया जा सके और इस तरह ऐक्य मत स्थापित कर वर्तमान वि० सं० 2057 को "शङ्कराचार्य संन्यास-पञ्चविंशशती" के रूप में मनाया जा सके।

मन्त्री
शङ्कराचार्य परम्परा एवं
संस्कृति रक्षक परिषद्
वाराणसी

लेखक का संक्षिप्त परिचय

धर्मसंघ प्रकाशन, मेरठ द्वारा प्रकाशित

"आद्यश्रीशङ्कराचार्य–कालनिर्णय" पुस्तक से

धर्मसंघ प्रकाशन ने विचार किया कि भगवान् शङ्कराचार्य के आविर्भाव के सम्बन्ध में भी आधुनिक विचारकों ने महती त्रुटियाँ की हैं जिससे सब कुछ ईसाई धर्म के आगे-पीछे लगाने की प्रवृत्ति बन गयी है। इधर कुछ मनीषीगण अध्येता-विचारक लोगों के अन्तःकरण को भगवत्पाद ने आन्दोलित किया तब इस क्षेत्र में भी कुछ सरसराहट की सी अनुभूति हुई। कोलकाता निवासी श्री परमेश्वरनाथ मिश्र जी जैसे विद्वान् इस ओर प्रयासरत हैं। सभी महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं एवं अन्य काल सम्बन्धी प्रमाणों का गहन गम्भीर अध्ययन करने वाले श्री पं० परमेश्वरनाथ मिश्र जी से **'श्री शङ्कराचार्य परम्परा एवं संस्कृति रक्षक परिषद्'** ने साग्रह एतद् विषयक एक ग्रन्थ लिखने का निवेदन किया जो उन्होंने कठिन परिश्रम एवं विभिन्न ग्रन्थानुसन्धानोपरान्त पूर्ण कर लिया है परन्तु वह शोधपूर्ण ग्रन्थ अभी प्रकाश्य है। उसी प्रकाश्य बृहद् ग्रन्थ से कतिपय महत्वपूर्ण बिन्दुओं का संकलन कर आपने उक्त परिषद् को सौंपकर बड़ा उपकार किया है। **'शङ्कराचार्य परम्परा एवं संस्कृति रक्षक परिषद्'** द्वारा पूर्वपक्ष एवं उत्तरपक्ष दोनों का सार-संक्षेप देकर तुलनात्मक सामग्री 'अमिट कालरेखा-अर्वाचीन मत खण्डन' नामक एक पुस्तक में प्रकाशित की गई है। इसमें 21 बिन्दुओं पर विचार किया गया है साथ ही–काल निर्णय, राजा सुधन्वा की राजवंशावली तथा उनकी ताम्रपत्र-विज्ञप्ति, श्रीशारदापीठ-द्वारका की आचार्यावली, श्रीगोवर्द्धनपीठ-पुरी की आचार्यावली, श्रीज्योतिष्पीठ-बदरिकाश्रम की आचार्यावली और श्रीशृङ्गेरीपीठ से सम्बन्धित तीनों परम्पराओं की आचार्यावलियाँ परिशिष्ट के रूप में दी गई हैं।

श्री मिश्र जी ने मार्गशीर्ष शुक्ल 6 विक्रम संवत् 2016 में तत्कालीन वाराणसी जनपद के गोपीगंज थानान्तर्गत वराहीपुर ग्राम में शाण्डिल्य गोत्रीय मिश्रवंश में

श्री पं० विश्वनाथ मिश्र एवं श्रीमती शारदा देवी मिश्र के गृह में जन्म लिया। प्रयाग विश्वविद्यालय तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय से श्री मिश्रजी ने उच्च शिक्षा प्राप्त की। श्री मिश्र जी सम्प्रति कलकत्ता उच्च न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालय, भारत में अधिवक्ता के रूप में विधि व्यवसाय में निरत हैं। धर्म, दर्शन, इतिहास का आपने गहन गम्भीर अध्ययन किया है। विधि सम्बन्धी ग्रन्थों के अतिरिक्त राजनीति, इतिहास, दर्शन एवं धर्म से सम्बन्धित पुस्तकों का विशाल ग्रन्थागार श्री मिश्रजी के पास है जिसमें सहस्रो पुस्तकें सुरक्षित हैं। अनेक दुर्लभ पाण्डुलिपियों से युक्त मिश्रजी का यह ग्रन्थागार ही उनके गहन, व्यापक, शोधपूर्ण अध्ययन का द्योतक है।

सुबुद्ध निष्पक्ष विचारक उक्त पुस्तक का स्वयं अवलोकन कर सत्य का निर्धारण करें और श्रीयुत् मिश्रजी द्वारा आद्यश्रीशङ्कराचार्य जी के आविर्भावकाल सम्बन्धी लिखित बृहद् ग्रन्थ की प्रतीक्षा कर धैर्य रखें। हम आशा करते हैं कि यथाशीघ्र उपर्युक्त शोधग्रन्थ अध्येताओं के हाथों में होगा।

श्री कृष्ण प्रसाद शर्मा	**श्री मुरारीलाल शर्मा**	**श्री श्यामसुन्दर बाजपेयी**
	अध्यक्ष	*अध्यक्ष*
	धर्मसंघ, मेरठ	धर्मसंघ प्रकाशन, मेरठ

लेखक की कृतियाँ

1. अमिट कालरेखा (अर्वाचीन मत खण्डन)
2. अमिट कालरेखा (वितण्डवादी मत खण्डन)
3. अमिट कालरेखा (प्राचीन मत खण्डन) — प्रकाश्य
4. अमिट कालरेखा (सौरभ)
5. श्री भगवत्पाद आद्यशङ्कराचार्य—व्यक्तित्व एवं कृतित्व
6. मठाम्नाय-महानुशासनम का आङ्ल अनुवाद आङ्ल शारदा भाष्य सहित
7. वर्ण व्यवस्था का यथार्थ स्वरूप — प्रकाश्य
8. आजाद हिन्द फौज का इतिहास
   [आधिकारिक जापानी इतिहास के एक खण्ड के
   सम्बन्धित अंशों का हिन्दी भाषान्तर] — प्रकाश्य

कृतज्ञता ज्ञापन

प्रस्तुत पुस्तक के प्रणयन काल में मैंने शारदापीठ-द्वारका एवं ज्योतिष्पीठ बदरिकाश्रम पीठों के वर्तमान शङ्कराचार्य अनन्तश्रीविभूषित स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज, गोवर्द्धनपीठ-पुरी के वर्तमान शङ्कराचार्य अनन्तश्रीविभूषित स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती जी महाराज, शृङ्गगिरिपीठ के वर्तमान शङ्कराचार्य अनन्तश्रीविभूषित स्वामी भारतीतीर्थ जी महाराज के प्रतिनिधि एवं मठ मुद्राधिकारी आचार्य चल्लालक्ष्मण शास्त्री एवं अन्य अनेक महामण्डलेश्वरों तथा अखाड़ों से सम्पर्क किया। उक्त महापुरुषों / महानुभावों से विविध प्रमाण, सूचनायें तथा पुस्तकें प्राप्त हुईं जिनमें उपलब्ध विवरणों का सम्यक् उपयोग इस पुस्तक में मैंने किया है। अतः उक्त महापुरुषों/ महानुभावों के प्रति मैं अपनी श्रद्धा निवेदित करते हुए विनम्रभाव से अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। मैं विशेष रूप से उन विद्वानों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ जिनकी पुस्तकों के उद्धरणों का इस पुस्तक में उपयोग किया गया है।

इस पुस्तक के पुनरीक्षण में मेरे अग्रज श्री राजेश्वरनाथ मिश्र एवं श्री चन्द्रधर उपाध्याय तथा सतीश कुमार तिवारी ने महत्वपूर्ण सहयोग किया। पुस्तक निर्माण के विविध चरणों में मेरे भ्रात्रेयों श्री परंतप मिश्र, श्री भुवनभास्कर मिश्र और श्री राजीव रंजन मिश्र ने सम्यक् सेवा की। मेरे अन्य अग्रज श्री सुमेश्वरनाथ मिश्र के साथ-साथ श्री ओमप्रकाश दूबे, श्री सतीश उपाध्याय, श्री सत्यप्रकाश दूबे, श्री शिवप्रकाश शुक्ल, श्री पलकधारी सिंह एवं श्री कैलाश दूबे ने इस पुस्तक लेखन की अवधि में उत्पन्न व्यति-क्रम काल में मुझे पूर्ण सहयोग प्रदान किया जिससे ग्रन्थ को पूर्णता प्रदान करने में सफलता प्राप्त हुई। मेरी धर्मपत्नी श्रीमती रेखा मिश्र ने तो इस पुस्तक लेखन काल में जो सहयोग प्रदान किया उसे लीलावती एवं भामती की परम्परा के निर्वहन में किया गया कार्य ही कहा जा सकता है। मेरी पुत्रियों कुमारी प्रियंवदा मिश्र तथा

होता है कि वह 212 हिजरी सन् तुल्य ईसवी सन् 827-28 में जफर जा पहुँचा तथा 216 हिजरी सन् तुल्य ईसवी सन् 831-32 में मृत्यु को प्राप्त हुआ। कुरान के अनुसार समीरी अथवा समारियाई का अर्थ 'बछड़े का पूजक' करते हुए लोगन महोदय ने उक्त कब्र को चेरमान पेरुमल की कब्र बताकर आदिशङ्कराचार्य को उनका समकालीन मानते हुए श्री पाठक द्वारा सुझाये गये काल 788 ई० से 820 ई० को आदिशङ्कराचार्य का काल मान लिया जबकि केरलोत्पत्ति के अनुसार उक्त शङ्कराचार्य का जन्म ई० सन् 400 में हुआ था तथा वे 38 वर्ष तक इस धराधाम पर रहे।

पश्चात्वर्ती बौद्ध विद्वान् कमलशील ने आचार्य शङ्कर के भाष्य में उद्धृत कुछ पंक्तियों को दिङ्नाग की पंक्तियाँ बताकर अर्वाचीन मत को और बल दिया जिसका अनुशरण अन्य विद्वानों ने भी किया। अन्त में काशिकानन्द गिरि महोदय ने 'भारतीय अस्मिता और राष्ट्रीय चेतना के आधार जगद्गुरु आद्यशङ्कराचार्य' नामक पुस्तक में प्रकाशित अपने एक लेख 'भाष्यकार आचार्य भगवत्पाद का आविर्भाव समय' में उपर्युक्त अर्वाचीन मतावलम्बियों के अन्वेषणों को समेकित करते हुए भाष्यकार शङ्कराचार्य का आविर्भाव काल 788 ई० सन् तथा कैलाश गमन काल 820 ई० सन् प्रामाणिक बताया और अपनी उक्त मान्यता के आधार पर ई० सन् 1988 में आचार्य शङ्कर के आविर्भाव काल का कथित द्वादश शताब्दी वर्ष समारोह आयोजित किया।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि पं० बलदेव उपाध्याय द्वारा अनुवादित 'श्रीशङ्करदिग्विजय' के द्वितीय संस्करण की भूमिका में 1967 ई० में स्वामी प्रकाशानन्द आचार्य महामण्डलेश्वर श्री जगद्गुरु आश्रम, कनखल हरिद्वार ने आचार्य शङ्कर के पारम्परिक आविर्भाव काल युधिष्ठिर शक संवत् 2631 को ही प्रामाणिक माना है।

श्रीशङ्कराचार्य परम्परा एवं संस्कृति रक्षक परिषद् के द्वारा संज्ञान में लाये गये उपर्युक्त विभ्रमकारी मतवादों ने परिषद् से जुड़े इस पुस्तक के लेखक को आचार्य शङ्कर के आविर्भाव काल को निश्चित करने के लिये मान्य काल-निर्धारक सिद्धान्तों एवं प्रमाणों के अन्वेषण हेतु उन्मुख किया। इस पुस्तक में पूर्वपक्ष के रूप में उठाये गये अधिकांश प्रश्न महामण्डलेश्वर श्री काशिकानन्द जी के उपर्युक्त लेख से लिये गये हैं। परन्तु आवश्यक प्रश्न जो कि सहज उत्पन्न हो सकते थे उन्हें भी पूर्वपक्ष के रूप में देकर काले बिन्दुओं से चिह्नित कर दिया गया है।

पुरोवाक्

आज उपलब्ध हो रहा भारतीय इतिहास एकाङ्गी एवं आंशिक है। बर्बर आक्रामकों ने हमारी सभ्यता और संस्कृति दोनों को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। मठ, मन्दिर, नगर, आश्रम, हस्तशिल्प, उद्योग, व्यापार तथा समुन्नत वैज्ञानिक उपलब्धियों को छिन्न-भिन्न कर डाला और अनन्त ज्ञान-भण्डार पुस्तकालयों को स्वाहा कर दिया। फलस्वरूप शेष रहे खण्डित अवशेष। इन्हीं खण्ड-खण्ड विकीर्ण भग्नावशेषों पर आधृत हुआ हमारा तथाकथित इतिहास जिसको पुरातात्त्विक उत्खनित सामग्री पूर्णता न दे सकी। पराधीन भारत के गुलाम इतिहासकार पाश्चात्य दिशा-निर्देशों / इङ्गितों के वशंवद रहे। स्वतन्त्र चेतना के साथ इतिहास-लेखन नहीं हो सका। सारा इतिवृत्त राजपरिवार विशेष, नगर विशेष अथवा कालखण्ड विशेष के ही परिपार्श्व में सिमटा रहा। अखण्ड भारत का तारतम्यमय अक्षुण्ण इतिहास समग्रता की दृष्टि से नहीं लिखा जा सका। ऐसे इतिहासकारों तथा इतिहास-ग्रन्थों की कुछ संख्या रही भी। आदिकाल से लेकर आज तक भारत के सांस्कृतिक वृत्त तो नगण्य ही हैं। विश्वगुरु भारत का, एक भी ऐसा ग्रन्थ दुर्भाग्य से नहीं लिखा जा सका जो प्राचीनतम भारत से प्रारम्भ कर आज तक की साहित्यिक, धार्मिक, कलात्मिका एवं सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का परिचय दे सके। सङ्कीर्ण-मनोवृत्ति एवं स्वल्पोपलब्ध खण्डित सामग्री के अभाव के कारण अपेक्षायें पूर्ण नहीं हो सकीं। अतः सारा इतिहास अपने-अपने स्पर्श में आये हाथी के अङ्गों के अन्य वर्णन सा है, खण्डित, अपूर्ण और हास्यास्पद भी है।

ऐसी स्थिति में हमारी वैचारिक, दार्शनिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परायें ही हमारी विकीर्ण तथ्य-शृङ्खलाओं का ग्रंथन करने में सहायता कर सकती हैं। खेद है कि आज के तथाकथित वैज्ञानिक इतिहासकार परम्परा को निराधार, अवैज्ञानिक, ऐतिहासिक अथवा पुराकथा मात्र मानकर विषयों का अपलाप करते हैं। वास्तविकता तो यह है कि परम्परा ही हमें एक सूत्र में पिरोती है, विलुप्त एवं विस्मृतप्राय तथ्यों का परिचय देती है, समन्वय हेतु समाधान प्रस्तुत करती है।

विकीर्ण खण्डित पुरातात्त्विक अवशेषों के आधार पर भारत का जो भी राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक अथवा साहित्यिक इतिहास प्रस्तुत किया जा सका वह अपनी आधार सामग्री के सदृश ही स्वल्प एवं अपूर्ण ही है। हर्षवर्धन से पूर्व

का इतिहास समग्र भारत की समन्वित झांकी भी नहीं दे पा रहा है। उससे पूर्ववर्ती दार्शनिकों, आचार्यों, धर्मधाराओं, ग्रन्थों और सामाजिक मान्यताओं का प्रामाणिक वृत्तान्त उपलब्ध नहीं हो पा रहा है जिससे उनको लेकर अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ पैदा होती जा रही हैं। कुछ कुत्सित एवं घृणित राजनीतिक स्वार्थसाधक आज राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्ति की अर्द्धशताब्दी के बाद भी खुले मस्तिष्क से अपने समृद्ध रिक्थ का सही मूल्याङ्कन न करके विवाद उत्पन्न करते जा रहे हैं। भारत में विभिन्न अवसरों और प्रदेशों में प्रादुर्भूत विचार-धाराओं को परस्पर पूरक और संवर्धक न मानकर परस्पर विरुद्ध सिद्ध किया जा रहा है।

इसी प्रकार की विवादग्रस्त बातें भगवत्पाद आद्यश्रीशङ्कराचार्य के भी विषय में उठायी जा रही है। उनकी प्राचीनता की समुचित समीक्षा न करके बिना किसी 'ननु-नच' के उनको ईसा की 8वीं शताब्दी का माना जा रहा है, क्योंकि आज उपलब्ध खण्डित स्वल्प साक्ष्य इतने परवर्ती हैं कि उनके आधार पर शङ्कर को और प्राचीन सिद्ध ही नहीं किया जा सकता। प्रसन्नता का विषय है कि कुछ विद्वानों का दृगुन्मेष हो रहा है–आँखें खुल रही हैं, नये विवेचना के स्रोत प्रस्फुटित हो रहे हैं और उनके तथा अन्य अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर निष्पक्ष विचार की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी है। शङ्कराचार्य के काल निर्धारण में वैदिक परम्परा की प्रतिद्वन्द्वी बौद्धधारा के ग्रन्थ, आचार्य और विषय सहायक हो रहे हैं।

शङ्कराचार्य से महाराज सुधन्वा का सम्बन्ध सिद्ध है। सुधन्वा पौराणिक अथवा ऐतिह्य पात्र न होकर ऐतिहासिक पुरुष रहे हैं। तिब्बत के बौद्ध विद्वान् लामा तारानाथ ने अपने ग्रन्थ "भारत में बौद्ध धर्म का विकास" में ऐतिहासिक पुरुष सुधनु का उल्लेख किया है जो सुधन्वा के समरूप हैं। हिमाचल प्रदेश के ताबो बौद्धमठ में भी सुधनु से सम्बद्ध अभिलेख प्राप्त हो रहे हैं। इन अभिलेखों पर आस्ट्रिया के बौद्ध-विद्याविद् प्रो० अर्नेस्ट् इस्टाइन केलनर ने पुस्तक लिखी है, जो इटली के रोमनगर की इसमियो संस्था से प्रकाशित हो चुकी है। इनकी सभी बातें हमारे लिये प्रासङ्गिक नहीं भी हो सकती हैं किन्तु इतना तो निश्चित हो जाता है कि सुधनु (=सुधन्वा) ऐतिहासिक पुरुष थे, मात्र मिथक नहीं।

योरोपीय विद्वान् इङ्गल्स (Ingalls) ने 1954 ई० में शोध पत्रिका "फिलासफी–ईस्ट एण्ड वेस्ट" अङ्क 3 में शङ्कराचार्य द्वारा शारीरक भाष्य में उद्धृत बौद्ध सन्दर्भों की

समीक्षा प्रस्तुत की है और नये विचार प्रस्तुत करते हुए पुरानी स्थापनाओं का खण्डन किया है। इन्होंने भाष्य में तथाकथित रूप से धर्मकीर्ति के नाम से उद्धृत अंश को प्रमाणवार्तिक आदि बौद्ध न्याय के आचार्य धर्मकीर्ति का वचन न मानकर किसी अन्य धर्मकीर्ति का कथन माना है। बौद्ध नैयायिक धर्मकीर्ति के उद्धृत वचन के आधार पर शङ्कराचार्य का समय उनके बाद स्थापित किया जाता है। इङ्गल्स के आधार पर शङ्कर के धर्मकीर्ति से उत्तरवर्तिता की अवधारणा निर्मूल हो जाती है।

इसी प्रकार की बातें माध्यमिक, वैभाषिक, योगाचार और सौत्रान्तिक मतों की 'शारीरकभाष्य' में विवेचना के विषय में उठती हैं। यहाँ केवल सामान्य आधारभूत सिद्धान्त का खण्डन है, न कि आचार्य विशेष की उक्ति का। इस तथ्य को सभी बौद्ध विद्वान् निर्विवाद रूप से स्वीकार करते हैं कि किसी भी आचार्य ने, चाहे वह वसुबन्धु हों, असङ्ग हों, मैत्रेयनाथ, आर्यदेव अथवा नागार्जुन हों, ऐसा नया कुछ भी नहीं कहा है जिसका उपदेश पूर्ववर्ती बुद्धों ने किसी न किसी रूप में न किया हो। अतः समस्त सम्प्रदायों का मूल तो बुद्ध-वचनों में ही मिलता है, परवर्ती आचार्य तो मात्र उनको व्यवस्थित करनेवाले ही हैं, प्रचारक हैं उद्भावक नहीं। बुद्ध भी एक नहीं अब तक के द्वादश कल्पों में कुल मिलाकर तण्हङ्कर से लेकर शाक्यमुनि गौतम बुद्ध तक 28 हो चुके हैं, मैत्रेय नाम के 29वें बुद्ध का प्रादुर्भाव अभी शेष है जो भविष्य में होगा। 'बुद्धवंश' पालिग्रन्थ में (नालन्दा महाविहार से सन् 1959 ई० में प्रकाशित) पृष्ठ 297 से 381 पर इनका वर्णन है। किसी कल्प में चार, किसी में एक, दो, तीन अथवा चार बुद्ध हुये हैं। बुद्ध पद बोधि प्राप्त मनुष्य की उपाधि है नाम विशेष नहीं।

उक्त सभी बुद्ध ऐतिहासिक पुरुष रहे हैं। भद्रकल्प में उत्पन्न ककुसन्ध, कोणागमन तथा कस्सप इन तीनों के स्तूप-स्मारक श्रावस्ती से निकट अथवा कुछ योजन दूर भारत या नेपाल में मिल रहे हैं। इससे इनकी ऐतिहासिकता सिद्ध हो जाती है। गौतम बुद्ध से सम्बद्ध स्तूप और अवशेष तो लोकविदित ही हैं।

इन सभी बुद्धों की विशेषता यह रही है कि उन्होंने अपनी स्थापनाओं, मान्यताओं, विचारों को अपना स्वतन्त्र चिन्तन नहीं अपितु पूर्ववर्ती बुद्धों द्वारा अनुभव के बाद उपदिष्ट सत्यों का प्रतिरूप माना है–'बुद्ध वंश पालि' पृष्ठ 304 में यही कहा गया है–

अतीत बुद्धानं जिनानं देसितं,
निकीलितं बुद्ध परम्परागतं।

पुब्बेनिवासानुगताय बुद्धिया,
पकासमी लोकहितं सदेव के॥ १।७९॥

अर्थात् जो एक बुद्ध का उपदेश है वह अतीत के बुद्धों , जिनों द्वारा उपदिष्ट, निष्कीलित और बुद्धों की परम्परा से आया हुआ है। वह पूर्व जन्म की स्मृति से अनुगत बुद्धि के द्वारा देवताओं सहित मनुष्यलोक के हितार्थ प्रकाशित किया गया है। इसी प्रकार अन्यत्र **"पुब्बकेहि महेसीहि आसेवितनिसेवितं"** (वही पृष्ठ 314) 2.126 सदृश उक्तियाँ द्रष्टव्य हैं। सम्पूर्ण पालित्रिपिटक तथा संस्कृत स्रोतों में पूर्व बुद्धों की मान्यताओं और अनुभवों के परवर्ती बुद्धों द्वारा प्रतिपादन का उल्लेख स्थान-स्थान पर मिलता है। इसी कारण पूर्ववर्ती बुद्ध के उपदेश शब्दशः और वाक्यशः परवर्ती बुद्धों के कथनों में उद्धृत हो जाते हैं। उनका उल्लेख करते समय आचार्य भी उन्हीं को उद्धृत कर देते हैं जो बाद में अल्पज्ञों द्वारा बुद्ध का नहीं, आचार्य विशेष के वाक्य समझ लिये जाते हैं। ऐसी ही कुछ बात धर्मकीर्ति तथा अन्य बौद्ध सम्प्रदायों के सिद्धान्तों के निरूपण के विषय में भी चरितार्थ होती है।

आज आवश्यकता है, समय की अपेक्षा है कि वैदिक तथा अवैदिक यावदुपलब्ध समस्त वाङ्मय का आधिकारिक आलोडन-विलोडन करके प्राप्त अन्तःसाक्ष्यों के साहाय्य से बाह्य साक्ष्यों से संगति बैठाते हुये विषय स्थापना की जाये। जहाँ ये भी पूर्णतः सहायक नहीं हो पाते वहाँ परम्परागत मान्यताओं को भी प्रामाणिक मानकर निष्कर्ष निकाला जाये।

कभी-कभी तो केवल उत्खनित पुरातात्त्विक सामग्रियों को ही आधार बनाकर विषय स्थापना हास्यास्पद प्रतीत होगा। यथा–यदि काल पात्रों में सुरक्षित सामग्री को ही आधार माना जायेगा तो श्रीमती इन्दिरा गांधी की तो ऐतिहासिकता प्रमाणित होगी किन्तु उनके पूर्ववर्ती और परवर्ती अनुल्लिखित प्रधान-मन्त्रियों तथा समाजसेवियों की नहीं।

अतः उदार एवं आग्रहमुक्त दृष्टि से उपलब्ध सर्वविध स्रोतों के आधार पर भारत का एक सर्वाङ्गीण सांस्कृतिक इतिहास रचा जाना चाहिये। प्रस्तुत ग्रन्थ के विद्वान् लेखक ने इसी दिशा में हमें उन्मुख करने का ऐदम्प्रथम सफल प्रयास किया है। जिसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं।

प्रो० कामेश्वरनाथ मिश्र
संस्कृत विभाग, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी-221007

समर्पण

वैदिक सनातन-धर्म के
उन्नायक एवं शिवावतार
श्रीमज्जगद्गुरु आद्यशङ्कराचार्य
के
पादपद्मों में
सादर समर्पित

विषय सूची

अमिट कालरेखा...

बिन्दु-*1*

गौतम बुद्ध का निर्वाणकाल

० पूर्वपक्ष

आज के इतिहास विशेषज्ञ यह मानते हैं कि भगवान् बुद्ध का जन्म ईसवी सन् 561 तथा निर्वाण ईसवी सन् पूर्व 481 में हुआ। यदि आचार्य का समय ईसवी सन् पूर्व 509 से ईसवी सन् पूर्व 477 होता तो ऐसी स्थिति में उनका शास्त्रार्थ बुद्धानुयायियों के साथ न होकर साक्षात् बुद्ध के साथ ही सम्भव था। क्या इस बात को इतिहास पढ़ने वाला बच्चा भी मान सकता है?

उत्तरपक्ष

कैण्टन[1] से प्राप्त एक अभिलेख का प्रामाण्य ग्रहण कर इतिहासकार डॉ० रमेश चन्द्र मजुमदार एवं डॉ० विद्याधर महाजन ने गौतम बुद्ध का निर्वाणकाल ईसवी सन् पूर्व 487 माना है। इसकी पुष्टि बौद्ध-ग्रन्थ 'महावंश' से भी होती है जिसके अनुसार [2]गौतम बुद्ध के निर्वाण के 218 वर्ष पश्चात् मौर्य सम्राट् अशोक का राज्याभिषेक हुआ था। [3]द्वारका-शारदामठ के तत्कालीन शङ्कराचार्य द्वारा 1896-97 ईसवी सन् में रचित 'विमर्शः' ग्रन्थ के अनुसार ईसवी सन् पूर्व 488 में आचार्य शङ्कर ने अपनी धार्मिक दिग्विजय यात्रा का शुभारम्भ द्वारका से किया। ऐसी स्थिति में द्वारका से अत्यधिक दूर कुशीनारा में 487 ईसवी पूर्व में 80 वर्ष की आयु में मृत्यु को वरण करने वाले गौतम बुद्ध के साथ आचार्य शङ्कर का शास्त्रार्थ होना सम्भव न था। [4]नेपाल के इतिहास से ज्ञात होता है कि शङ्कराचार्य बौद्ध विद्वानों से शास्त्रार्थ करने हेतु उनकी खोज में चल पड़े जिसके फलस्वरूप 16 बोधिसत्व उनकी विद्वता से भयाक्रान्त होकर शास्त्रार्थ से बचने हेतु भारत से नेपाल भाग गये। शङ्कराचार्य उन 16 बोधिसत्वों का पीछा करते हुए ई० पूर्व 487 में नेपाल पहुँचे परन्तु उन्हें बोधिसत्व न मिले क्योंकि वे लोग शङ्कराचार्य से बचने हेतु उत्तर दिशा में स्थित हिमालय की ओर भाग गये थे। ऐसी स्थिति में नेपाल के गृहस्थ बौद्ध विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित कर वहाँ पर सनातन धर्म की पुनःप्रतिष्ठा कर आचार्य शङ्कर वापस पूर्व समुद्र की ओर चले गये।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य शङ्कर ने बुद्ध एवं उनके सोलह बोधिसत्वों से शास्त्रार्थ करने का प्रयास किया परन्तु बुद्ध की मृत्यु तथा बोधिसत्वों

के पलायन ने उनके प्रयास को विफल कर दिया। आचार्य शङ्कर का प्रामाणिक काल ई० पूर्व 507 से ई० पूर्व 475 है। अतः उपर्युक्त परिस्थितियों में उनका शास्त्रार्थ साक्षात् बुद्ध के साथ न होकर बुद्धानुयायियों के साथ होना पूर्णतया संगत है।

बिन्दु-2

चार, सम्प्रदाय प्रवर्तक बुद्ध

० पूर्वपक्ष

आचार्य ने वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार एवं माध्यमिक इन चारों सिद्धान्तों का यथासम्भव निराकरण किया है। यह निश्चित बात है कि ये चार मतभेद बुद्ध के काफी समय बाद में हुए हैं। वैभाषिक मत का प्रवर्तक कात्यायनीपुत्र बुद्ध के तीन सौ वर्ष बाद, सौत्रान्तिक मत का प्रवर्तक कुमारलात बुद्ध के चार सौ वर्ष बाद, योगाचार मत का प्रवर्तक मैत्रेयनाथ ई० सन् की चतुर्थ शती तथा माध्यमिक मत का प्रवर्तक नागार्जुन ई० सन् की द्वितीय शती में हुआ था। अतः ई० सन् की द्वितीय शती से पूर्व आचार्य को ले जाना सम्भव नहीं है।

उत्तरपक्ष

वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार एवं माध्यमिक सम्प्रदायों का प्रवर्तन गौतम बुद्ध एवं उनके तीन पूर्ववर्ती बुद्धों–क्रमशः कश्यप, कोणागमन, (कनकमुनि) तथा क्रकुच्छन्द द्वारा किया गया था। कात्यायनीपुत्र, कुमारलात, मैत्रेयनाथ एवं नागार्जुन उपर्युक्त सम्प्रदायों के प्रवर्तक नहीं हैं। इन लोगों ने भाष्यग्रंथों का सृजन कर पूर्ववर्ती चार बुद्धों द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का विशदीकरण एवं व्याख्यान किया है। इसमें साक्षात् गौतम बुद्ध का वचन प्रमाण है। [5]वेरंजावर्षावास काल में गौतम बुद्ध के शिष्य सारिपुत्र ने उनसे पूछा–'किन-किन बुद्धों का सम्प्रदाय चिरस्थायी नहीं हुआ और ऐसा होने का कारण क्या था? गौतम बुद्ध ने उत्तर दिया–'भगवान् क्रकुच्छन्द, कोणागमन तथा कश्यप के सम्प्रदाय चिरस्थायी हुए क्योंकि वे श्रावकों को विस्तार पूर्वक धर्मदेशना करने में आलस्य रहित थे। उनके उपदेश किये सूत्र, गेय, व्याकरण (=व्याख्यान), गाथा, उदान, इतिवृत्तक, जातक, अद्भुतधर्म, व वैदल्य

बहुत थे। उन्होंने शिक्षापदों (=विनय) का विधान किया था तथा प्रातिमोक्ष (=भिक्षुओं के आचारिक नियम) का उपदेश किया था जिसके कारण उन बुद्ध भगवानों के तथा बुद्धानुबद्ध श्रावकों के अन्तर्धान होने पर परवर्ती प्रव्रजित शिष्यों की परम्परा ने उनके सम्प्रदायों को दीर्घकाल तक चिरस्थायी रखा। परन्तु भगवान् विपश्यी, शिखी तथा विश्वभू के सम्प्रदाय चिरस्थायी नहीं हुए क्योंकि वे श्रावकों को विस्तारपूर्वक धर्मदेशना करने में आलसी थे। उनके उपदेश किये सूत्र, गेय, व्याख्यान, गाथा, उदान, इतिवृत्तक, जातक, अद्भुतधर्म व वैदल्य थोड़े थे। उन्होंने शिक्षापदों का विधान नहीं किया था तथा प्रातिमोक्ष का उपदेश नहीं किया था जिसके कारण उन बुद्ध भगवानों तथा उनके बुद्धानुबद्ध श्रावकों के अन्तर्धान होने के बाद पिछले प्रव्रजित श्रावकों ने उनके सम्प्रदायों का शीघ्र ही लोप कर दिया'।

उपर्युक्त प्रमाण से यह प्रकट होता है कि गौतम बुद्ध के समय कम से कम उनके तीन पूर्ववर्ती बुद्धों द्वारा प्रवर्तित तीन अलग-अलग सम्प्रदायों का विपुल साहित्य वर्तमान था। बाद में गौतम बुद्ध ने अपने इन तीन पूर्ववर्ती बुद्धों का अनुकरण करते हुये चौथे सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। इन्हीं चार सम्प्रदायों को विभिन्न बौद्ध विद्वानों के भाष्यग्रन्थों की प्रसिद्धि के आधार पर हम वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार एवं माध्यमिक सिद्धान्तों के नाम से जानते हैं। अतएव यह कहना सर्वथा अयुक्तियुक्त एवं असंगत है कि उपर्युक्त चारों सम्प्रदायों का विकास गौतम बुद्ध के पश्चात् हुआ। परवर्ती बौद्ध विद्वानों ने तो केवल प्राचीन बौद्ध सिद्धान्तों की व्याख्या एवं मण्डन किया है न कि प्रवर्तन।

आचार्य नरेन्द्रदेव लिखते हैं–[6]'हीनवादियों के अनुसार शत साहस्रिकाप्रज्ञापारमिता' अन्तिम महायान सूत्र है और इसके रचयिता नागार्जुन हैं। वास्तव में नागार्जुन कृत प्रज्ञापारमितासूत्रशास्त्र पंचविंशशतिसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता की टीका है। इसी कारण भ्रमवश नागार्जुन को शतसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता का रचयिता मान लिया गया। कम से कम नागार्जुन महायान के प्रतिष्ठापक नहीं हैं, क्योंकि इसमें सन्देह नहीं कि उनसे बहुत पहले ही महायान सूत्रों की रचना हो चुकी थी। आचार्य नरेन्द्रदेव आगे लिखते हैं–[7]योगाचार विज्ञानवाद के प्रतिष्ठापक असंग न थे बल्कि मैत्रेयनाथ थे। अभिसमयालङ्कारकारिका मैत्रेयनाथ की कृति है। यह ग्रन्थ पंचविंशशतिसाहस्रिका-प्रज्ञापारमिता सूत्र की टीका है। यह टीका योगाचार की दृष्टि से लिखी गई है।

बिन्दु-3

पूर्ववर्ती बुद्धों के अस्तित्त्व का प्रमाण

० पूर्वपक्ष

अभिलेखीय, पुरातात्विक एवं प्राचीन काल के विदेशी यात्रियों के विवरणात्मक साक्ष्यों के अभाव में गौतम बुद्ध के पूर्ववर्ती बुद्धों–क्रकुच्छन्द, कोणागमन तथा कश्यप को इतिहास पुरुष कैसे माना जा सकता है?

उत्तरपक्ष

ईसवी सन् की पाँचवीं सदी के प्रथम दशक में भारत भ्रमण कर रहे चीनी यात्री फाहियान ने लिखा है–[8]श्रावस्ती नगर के दक्षिण पश्चिम दिशा में 12 योजन पर 'न पीइ किया' नामक गाँव में क्रकुच्छन्द बुद्ध व यहाँ से उत्तर दिशा में एक योजन पर एक गाँव में कनक मुनि बुद्ध (=कोणागमन बुद्ध) का तथा श्रावस्ती नगर से पश्चिम 50 ली पर 'टूवीई' नामक गाँव में कश्यप बुद्ध के जन्म स्थान पर उनके स्तूप बने हैं। [9]फाहियान के यात्रा विवरण के हिन्दी भाषान्तरकर्ता श्री जगन्मोहन वर्मा के अनुसार–'न पीइ किया' को नाभिका कहते थे। इसका खण्डहर नेपाल राज्य में बाणगंगा की बाईं ओर 'लोरी की कुदान' और 'गोटिहवा' गाँवों के मध्य में है। बुद्ध वंश में इसे क्षेमावती लिखा है। कनकमुनि का स्थान नाभिका से उत्तर-पूर्व साढ़े छः मील पर उजाड़ पड़ा है। तिलौरा और गोवरी के पास खण्डहर हैं। इस पर का अशोक स्तम्भ अब तिलौरा से डेढ़ मील उत्तर में निगलिहवा में टूटा पड़ा है। 'टूवीई' श्रावस्ती से 9 मील दूर 'टंडवा' नामक गाँव है।

फाहियान आगे लिखता है–[10]दक्षिण जनपद में प्राचीन कश्यप बुद्ध का एक संघाराम है जो एक समूचे पर्वत को काटकर बना है। [11]संकाश्य में जहाँ पूर्व के तीन बुद्ध और शाक्यमुनि बुद्ध बैठे, जिस स्थान पर चंक्रमण किया, जिस स्थान पर सब बुद्धों की छाया है सर्वत्र स्तूप बने हैं। [12]कान्यकुब्ज से दक्षिण पश्चिम में साकेत नामक महाजनपद में चारों बुद्धों के चंक्रमण और बैठने के स्थान पर अब स्तूप बने हैं। [13]श्रावस्ती में देवदत्त के अनुयायियों के भी संघ हैं। वे पूर्व के तीन बुद्धों की पूजा करते हैं, केवल शाक्यमुनि बुद्ध की पूजा नहीं करते। [14]गृध्रकूट पर्वत की चोटी

पर पहुँचने से 3 ली इधर ही एक पत्थर की कंदरा है। कंदरा के सामने चारों बुद्धों के बैठने के स्थान हैं। [15]चंपा (भागलपुर जनपद का एक विभाग) में सब बुद्धों के बैठने के स्थान पर स्तूप बने हैं।

[16]हरिस्वामिनी के (गुप्त) संवत् 131 तुल्य ईसवी सन् 450-51 के साँची प्रस्तर अभिलेख में हरिस्वामिनी के द्वारा प्रदत्त 4 दीनार की अक्षयनीवी के ब्याज से चतुर्बुद्ध आसन के चारों बुद्धों में से प्रत्येक बुद्ध के लिये प्रतिदिन एक दीप जलाने का निर्देश है।

[17]कोणागमन बुद्ध (=कनक मुनि) की ऐतिहासिकता की पुष्टि मौर्य सम्राट् अशोक के निगलिहवा स्तम्भाभिलेख से भी होती है। उक्त अभिलेख के अनुसार सम्राट् अशोक मौर्य ने अपने राज्याभिषेक के 14वें वर्ष में कोणागमन बुद्ध के स्तूप को द्विगुणित करवा दिया तथा अपने राज्याभिषेक के (20वें) वर्ष में वहाँ जाकर पूजन-अर्चन किया।

अपनी भारत यात्रा समाप्त कर चीनी यात्री फाहियान 412 ईसवी सन् में श्रीलंका पहुँचा। [18]वहाँ पर एक बुद्ध के दाँत की राजकीय शोभायात्रा के अवसर पर फाहियान ने एक राजकीय घोषणा सुनी जिसके अनुसार उन बुद्ध का निर्वाण उस समय से 1467 वर्ष पूर्व अर्थात् ईसवी सन् पूर्व 1055 में हुआ था। एक अन्य स्थान पर फाहियान ने लिखा है–[19]हान देश (=चीन) में चाऊ वंशी महाराज पिंग के शासन काल में मैत्रेय बोधिसत्व की मूर्ति की स्थापना बुद्धदेव के निर्वाण से तीन सौ वर्ष पीछे हुई। [20]पिंग का शासनकाल 750 ई०पू० से 719 ई०पू० तक था। श्रीलंकाई घोषणा के परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि मैत्रेय बोधिसत्व की प्रतिमा-स्थापन का कार्य चीन में कश्यप बुद्ध के निर्वाण के 305 वर्ष पश्चात् राजा पिंग के शासन काल के प्रारम्भिक वर्ष ई०पू० 1050 में हुआ था। गौतम बुद्ध के ठीक पूर्ववर्ती सम्प्रदाय प्रवर्तक बुद्ध कश्यप थे अतः निश्चितरूपेण ई०पू० 1055 कश्यप बुद्ध का/निर्वाण काल सिद्ध होता है।

[21]थूप वंश (स्तूपवंश) नामक ग्रन्थ में भी क्रकुच्छन्द, कनकमुनि तथा कश्यप बुद्धों के स्तूपों का सम्यक् विवरण उपलब्ध है।

उपर्युक्त अभिलेखीय, पुरातात्विक एवं प्राचीनकाल में भारत-भ्रमणकारी चीनी यात्री फाहियान के विवरणों से इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं रह जाता कि गौतम बुद्ध की ही भाँति उनके पूर्ववर्ती तीन बुद्ध क्रमशः कश्यप, कोणागमन तथा क्रकुच्छन्द इतिहास पुरुष थे।

बिन्दु-4

प्रज्ञापारमिता के अन्वेषक सुमेध बुद्ध

० पूर्वपक्ष

'प्रज्ञापारमिता' के अन्वेषक यदि नागार्जुन नहीं तो कौन से बुद्ध थे?

उत्तरपक्ष

[22]आचार्य नरेन्द्रदेव के अनुसार सुमेध नामक बुद्ध के अन्वेषण करने से दस प्रारमिताएँ प्रकट हुईं, जिनका आसेवन पूर्वकाल में बोधिसत्वों ने किया था। पारमिता का अर्थ है पूर्णता, पालिरूप 'पारमी' है। दश पारमिताएँ हैं–दान, शील, नैष्कर्म्य, प्रज्ञा, वीर्य, क्षान्ति, सत्य, अधिष्ठान, मैत्री तथा उपेक्षा। [23]बौद्ध ग्रन्थ महावंश के अनुसार सुमेध 11वें तथा सिद्धार्थ गौतम 25वें बुद्ध थे। [24]यही क्रम बौद्ध साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् डॉ० कनाई लाला हाजरा को भी अभीष्ट है। इससे सम्यक् बोध होता है कि सुमेध बुद्ध, सिद्धार्थ गौतम बुद्ध से बहुत पूर्व हुए थे।

बिन्दु-5

प्रथम तीन पीठों के अनुसार आदिशङ्कराचार्य का आविर्भाव-काल

० पूर्वपक्ष

आचार्य द्वारा प्रतिष्ठापित चार मठ तो प्रसिद्ध ही हैं। द्वारका पीठ की वंशानुमातृका के अनुसार आचार्य का जन्म युधिष्ठिर शक संवत् 2631 व समाधि युधिष्ठिर शक संवत् 2663 तथा गोवर्द्धन पीठ की वंशानुमातृका के अनुसार आचार्य का जन्म 2300 वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। ज्योतिर्मठ की परम्परा विच्छिन्न होने के कारण वहाँ से कोई निश्चित समय नहीं प्राप्त होता। इस प्रकार आचार्य के आविर्भाव काल के सम्बन्ध में इन मठों में मतभेद है?

उत्तरपक्ष

आचार्य शङ्कर का आविर्भाव काल उपर्युक्त तीन मठों:–शारदामठ-द्वारका, गोवर्द्धनमठ-पुरी तथा ज्योतिर्मठ-बदरिकाश्रम के अनुसार निम्नांकित हैं–

[25]शारदामठ-द्वारका के पूर्व शङ्कराचार्य श्रीमद् राजराजेश्वरशङ्कराश्रम द्वारा 1896-97 ई० सन् में विरचित 'विमर्शः' नामक ग्रन्थ में आचार्य शङ्कर का जन्म युधिष्ठिर शक सम्वत् 2631 वैशाख शुक्ल पञ्चमी तथा कैलाश गमन युधिष्ठिर शक संवत् 2663 कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा लिखा है। वर्तमान में युधिष्ठिर शक संवत् 5138 (चालू) वर्त रहा है इसमें आचार्य शंकर जन्म वर्ष यु०श० संवत् 2631 का वियोग करने पर उनका आविर्भाव काल वर्तमान काल से 2507 वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। वर्तमान काल में ईसवी सन् का 2000 वाँ वर्ष चल रहा है अतएव ईसवी सन् में आचार्य शङ्कर का आविर्भाव काल ईसवी पूर्व 507 (=2507 वर्ष-2000 ई० सन्) निश्चित होता है।

[26]गोवर्द्धनमठ-पुरी के अनुसार आदिशङ्कराचार्य का आविर्भाव विक्रम संवत् पूर्व 450 में वैशाख शुक्ल पञ्चमी के दिन हुआ था। वर्तमान काल में विक्रम संवत् 2057 चल रहा है। इसमें 450 वर्ष का योग करने पर आचार्य शङ्कर का आविर्भाव काल प्राप्त होता है जो कि वर्तमान काल से 2507 वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। विक्रम संवत् पूर्व 450 वर्ष को ईसवी सन् में परिवर्तित करने पर उसमें 57 वर्ष का योग करना पड़ेगा क्योंकि विक्रम संवत् का प्रवर्तन ईसवी सन् पूर्व 58वें वर्ष में हुआ था जिसके कारण विक्रम संवत् तथा ईसवी सन् में 57 वर्ष का अन्तर प्राप्त होता है, इस प्रकार आचार्य का आविर्भाव काल ई०पू० 507 निश्चित होता है।

[27]ज्योतिर्मठ-बदरिकाश्रम के अनुसार आचार्य शङ्कर का जन्म (चालू) कलि संवत् 2595 में वैशाख शुक्ल पञ्चमी के दिन हुआ था। वर्तमान काल में चालू कलि संवत् 5102 चल रहा है इसमें से आचार्य शङ्कर का जन्म वर्ष कलि संवत् 2595 का वियोग करने पर आदिशङ्कराचार्य का आविर्भाव काल वर्तमान काल से 2507 वर्ष पूर्व प्राप्त होता है। (चालू) कलि संवत् का आरम्भ ई०पू० 3102 में हुआ था। इसमें से आचार्य शङ्कर के जन्म वर्ष (चालू) कलि सं० 2595 का वियोग करने पर उनका आविर्भाव काल ई०पू० 507 निश्चित होता है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना प्रासंगिक होगा कि ज्योतिर्मठ की परम्परा भी अविच्छिन्न है। [28]इस पीठ पर प्रथम आचार्य तोटकाचार्य से 42वें आचार्य श्रीरामकृष्ण तीर्थ पर्यन्त सभी आचार्य निर्विघ्न समासीन रहे। ईसवी सन् 1776 में श्री रामकृष्ण तीर्थ के ब्रह्मलीन

होने के पश्चात् इस पीठ के 43वें आचार्य टोकरानन्द जी को टीहरी-गढ़वाल के नरेश प्रदीप शाह ने लोभवश बद्रीनाथ मन्दिर के अर्चक पद को नहीं संभालने दिया। नरेश ने एक नम्बूदरीपाद ब्राह्मण गोपाल नामक ब्रह्मचारी को रावल की उपाधि से विभूषित कर बद्रीनाथ मन्दिर के अर्चक पद पर वि० सं० 1833 में समासीन कर दिया, जिसके कारण श्री टोकरानन्द जी को ज्योतिर्मठ में रहकर अपने धार्मिक कृत्य का निर्वहन करना कठिन हो गया क्योंकि पूर्ववर्ती शङ्कराचार्यों का आर्थिक स्रोत बद्रीनाथ मन्दिर में श्रद्धालुओं द्वारा अर्पित भेंट-उपहार ही था।

[29]ऐसी विषम परिस्थिति में ज्योतिर्मठ के 43वें आचार्य टोकरानन्द जी गुजरात प्रान्त के अहमदाबाद जनपद में अवस्थित धोलका चले आये तथा धोलका की धर्मानुरागी जनता के द्वारा प्रदत्त भेंट-उपहार की धनराशि से उन्होंने ज्योतिर्मठ के स्थानापन्न मुख्यालय की स्थापना की। ज्योतिर्मठ के इस स्थानापन्न मुख्यालय में श्री टोकरानन्द समेत कुल 9 आचार्य हुए। तत्पश्चात् ईसवी सन् 1941 में ज्योतिर्मठ बदरिकाश्रम के मुख्यमठ का जीर्णोद्धार कर वहाँ पर श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती का अभिषेक किया गया। श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती के बाद श्री कृष्णबोधाश्रम जगद्गुरु शङ्कराचार्य हुए। श्री कृष्णबोधाश्रम के बाद अनन्तश्रीविभूषित स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज यहाँ के शङ्कराचार्य के पद पर अभिषिक्त हुए जो कि वर्तमान काल तक पदारूढ़ हैं। मूल ज्योतिर्मठ की पुनः प्रतिष्ठा हो जाने के पश्चात् ज्योतिर्मठ का स्थानापन्न मुख्यालय धोलका मठ ईसवी सन् 1986 में ज्योतिर्मठ के वर्तमान जगद्गुरु शङ्कराचार्य अनन्तश्रीविभूषित स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी को समर्पित कर दिया गया। इस प्रकार यह कहना कि ज्योतिर्मठ की परम्परा विच्छिन्न रही, कोरा भ्रम है। टोकरानन्द जी से अनन्तश्रीविभूषित स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती पर्यन्त ज्योतिर्मठ के 12 आचार्य हुए हैं और ब्रह्मचारी गोपाल से वासुदेव पर्यन्त बद्रीनाथ मन्दिर के कुल 12 ही रावल अब तक हुए हैं।

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि आचार्य शङ्कर के आविर्भाव काल के सम्बन्ध में अविच्छिन्न परम्परा वाले शारदामठ-द्वारका, गोवर्द्धनमठ-पुरी एवं ज्योतिर्मठ-बदरिकाश्रम में पूर्ण मतैक्य है और ये तीनों मठ आचार्य शङ्कर का आविर्भाव काल वर्तमान काल ईसवी सन् 2000 से 2507 वर्ष पूर्व तथा कैलाशगमन काल 2475 वर्ष पूर्व मानते हैं।

बिन्दु-6

शृङ्गगिरिपीठ के अनुसार आदिशङ्कराचार्य का आविर्भाव-काल

० पूर्वपक्ष

परन्तु शृङ्गगिरिपीठ के अनुसार 3889 कलि संवत् आचार्य का आविर्भाव-काल है–

निधि नागे भवह्रब्दे विभवे मासि माधवे।
शुक्ले तिथि दशम्यां तु शङ्करार्योदयः स्मृतः ॥

यद्यपि कुछ आधुनिक अन्वेषकों ने 'काशी में कुम्भकोणम् मठ विषयक विवाद' नामक ग्रन्थ का उद्धरण देकर आचार्य का 684 ईसवी सन् से 716 ईसवी सन् तक का समय शृङ्गगिरि वालों को मान्य बताया है तथा कुछ अन्य विचारकों ने सुरेश्वराचार्य को दीर्घायु बताकर सैकड़ों वर्ष पूर्व आचार्य को ले जाने की बात लिखी है, किन्तु 1988 ईसवी सन् में द्वादश शताब्दी मनाने के सम्बन्ध में शृङ्गगिरि के शङ्कराचार्य के साथ जो पत्र व्यवहार हुआ उसमें तत्कालीन पीठाधिपति ने उसे स्वीकृत करते हुए प्रामाणिक बताया। शृङ्गगिरि मठ वालों के अनुसार शृङ्गगिरि के उत्कर्ष को कम करने और अपने महत्व को बढ़ाने के लिए दूसरे मठ वालों ने आचार्य को तेरह सौ वर्ष पीछे ले जाने का निर्णय किया?

उत्तरपक्ष

शृङ्गगिरि मठ की प्राचीन पारम्परिक मान्यता के अनुसार आदिशङ्कराचार्य का जन्म विक्रम के शासन के 14वें वर्ष में हुआ था। इस संदर्भ में माधवाचार्य कृत शङ्करदिग्विजय ग्रन्थ के आङ्गलभाषान्तरकर्ता श्री रामकृष्ण मठ, मद्रास (सम्प्रति चेन्नई) के स्वामी तपस्यानन्द को तत्कालीन शृङ्गगिरिपीठ के शङ्कराचार्य के व्यक्तिगत सचिव द्वारा लिखे गये एक पत्र का सुसंगत अंश इस प्रकार है–

[30]शृङ्गगिरि मठ के अभिलेखों के अनुसार शङ्कर का जन्म विक्रमादित्य के शासन के 14वें वर्ष में हुआ था। कहीं भी शृङ्गगिरि मठ के अधिकृत व्यक्तियों ने स्वयं ईसवी सन् पूर्व अथवा ईसवी सन् पश्चात् की अवधि नहीं दी है।'........

'संकलनकर्ताओं ने इसको उज्जैन के विक्रमादित्य का संवत् मिथ्या उद्धृत किया है। श्री एल० राइस ने सुझाया है कि यह चालुक्य विक्रमादित्य के शासन वर्ष में अंकित है जो कि इतिहासकारों के अनुसार 655 ई० से 670 ई० तक शासक थे।'

उपर्युक्त पत्रांश से स्पष्ट है कि शृङ्गगिरि के पूर्व शङ्कराचार्य श्रीमद् अभिनवविद्यातीर्थ (आचार्यात्व काल ई० सन् 1954 से ई० सन् 1989) के पूर्वाचार्यों के समय तक शृङ्गगिरि मठ की प्राचीन मान्यता यही थी कि आचार्य शङ्कर का जन्म किसी विक्रम नामक शासक के 14वें वर्ष में हुआ था। परन्तु पाश्चात्य विद्वान् एल० राईस के सुझाव को गुरुता प्रदान करते हुए श्रीमद् अभिनव विद्यातीर्थ के समय में आचार्य शङ्कर का आविर्भाव काल ईसवी सन् 669 मान लिया गया। शृङ्गगिरि मठ के एक अन्य पूर्वाचार्य श्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव नरसिंह भारती (आचार्यत्व काल 1879 ई० सन् से 1912 ई० सन्) की आन्ध्र भाषा में लिखित जीवनी 'महान तपस्वी' में शृङ्गगिरिमठ की अर्वाचीन मान्यता के अनुसार कालक्रमानुसार एक आचार्यावली प्रस्तुत की गई है। उस पुस्तक में दिनाङ्क 15-5-1966 ई० की तिथि को मुद्राङ्कित तत्कालीन शङ्कराचार्य श्रीमद् अभिनव विद्यातीर्थ का संदेश भी प्रकाशित किया गया है। ऐसी स्थिति में पुनः इन्हीं आचार्य द्वारा आचार्य शङ्कर का आविर्भाव काल 788 ईसवी सन् मान लेना जैसा कि पूर्वपक्षी ने लिखा है, यह प्रमाणित कर देता है कि इन आचार्य के पास ऐसा कोई ठोस प्रमाण नहीं था जिसके आधार पर वे आचार्य शङ्कर का आविर्भाव काल दृढ़ता पूर्वक बता सकते। जिसके कारण अन्य लोगों के सुझाव पर एक बार इन्होंने आचार्य शङ्कर का आविर्भाव काल 669 ई० तथा दूसरी बार पूर्वपक्षी के सुझाव पर 788 ई० मान लिया।

वास्तव में शृङ्गगिरि मठ की प्राचीन परम्परा में जिस विक्रमादित्य के शासन के 14वें वर्ष में आचार्य शङ्कर का जन्म होना लिखा है उसका अभिषेक ई०पू० 521 में हुआ था। यह कोई और नहीं बल्कि उज्जैन का राजा चण्डप्रद्योत था। चण्ड का अर्थ विक्रम व वैक्रम तथा प्रद्योत का अर्थ आदित्य शब्दकोश में दिया गया है। जिससे स्पष्ट हो जाता है कि चण्डप्रद्योत, विक्रमादित्य का ही रूपान्तर है। [31]कथासरित्सागर में कहा गया है कि इसका यथार्थ नाम विक्रमादित्य था। शत्रुओं के लिए कठिन होने

के कारण इसे विषमशील तथा बड़ी सेना रखने के कारण महासेन कहा जाता था। माता काली को इसने अपनी एक उँगली काटकर अर्पित कर दी थी। जिसके कारण इसे चण्ड भी कहते थे। इसने कर्णाट आदि देशों के राजाओं को जीत लिया था। ऐसी स्थिति में कर्णाट राज्य के अन्तर्गत पड़नेवाले शृङ्गगिरि पीठ के प्राचीन अभिलेख में निश्चितरूप से इसी राजा विक्रमादित्य के शासन वर्ष का उल्लेख है। इस नरेश के शासन का 14वाँ वर्ष ई० पू० 507 ही प्राप्त होता है जो कि आदिशङ्कराचार्य का वास्तविक आविर्भाव काल है।

पूर्वपक्षी द्वारा उद्धृत श्लोक किसी अन्य शङ्कर नामक शङ्कराचार्य के जन्मकाल को बताता है क्योंकि उक्त शङ्कर का जन्म विभव वर्ष में दशमी के दिन होना लिखा है जबकि आदि शङ्कराचार्य का जन्म नन्दन वर्ष में वैशाख शुक्ल पञ्चमी के दिन हुआ था। वैसे यह श्लोक शृङ्गगिरि मठ की प्राचीन परम्परा का नहीं है।

यह कहना कि शृङ्गगिरि की प्रतिष्ठा को कम करने के लिये अन्य मठों के आचार्यों ने परस्पर विचार कर आदिशङ्कराचार्य का काल 1300 वर्ष पीछे कर दिया, मात्र कुण्ठा एवं तुच्छ अहम् का प्रतीक है। आदिशङ्कराचार्य के आविर्भावकाल पर उनके द्वारा स्थापित चार आम्नाय मठों की प्रतिष्ठा आधारित नहीं है बल्कि इन चारों मठों की प्रतिष्ठा इस बात पर आधारित है कि उन्होंने इन चार मठों की आम्नाय मठों के रूप में प्रतिष्ठा करके मठाम्नाय-महानुशासनम् में इन मठोंः—शारदामठ-द्वारका, गोवर्द्धनमठ-पुरी, ज्योतिर्मठ-बदरिकाश्रम तथा शृङ्गगिरि मठ के पीठाधीश्वरों को अपनी प्रतिमूर्ति कह दिया। चारों मठों की प्रतिष्ठा, सम्मान एवं मर्यादा समान है तथा सम्पूर्ण सनातन धर्मावलम्बी इन चारों पीठों के आचार्यों में समान श्रद्धा रखते हैं।[32] आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 1875 ईसवी सन् में लिखित अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखा है कि उनके ग्रन्थ लेखन से 2200 वर्ष पूर्व शङ्कराचार्य का जन्म हुआ था तो क्या स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी अन्य पीठों के शङ्कराचार्यों से मिलकर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाने तथा शृङ्गगिरि मठ के उत्कर्ष को कम करने के लिए ऐसा लिख दिया?

बिन्दु-7

शृङ्गगिरि (शृङ्गेरी) पीठ की अर्वाचीन अवधारणा की विसंगतियाँ

० पूर्वपक्ष

शृङ्गगिरि मठ की परम्परा में मान्य प्राचीन ग्रन्थों एवं शृङ्गगिरि मठ की कथित अर्वाचीन परम्परा की मान्यताओं में ऐतिहासिक साक्ष्यों के आलोक में जब तक विसंगतियाँ नहीं प्रदर्शित की जातीं तब तक हमें उत्तरपक्षी के मत को मानने में आपत्ति बनी रहेगी।

उत्तरपक्ष

शृङ्गगिरि मठ की परम्परा में मान्य ग्रन्थों एवं इस मठ की अर्वाचीन अवधारणा में निम्नांङ्कित विसंगतियाँ हैं—

1. माधवाचार्य विरचित शङ्कर दिग्विजय—[33]यह ग्रन्थ शृङ्गगिरि मठ के शङ्कराचार्य विद्यारण्यमुनि द्वारा ईसवी सन् की 14वीं सदी में विरचित माना जाता है। शृङ्गगिरिमठ के मतावलम्बी इस ग्रन्थ को आदरणीय व प्रामाणिक मानते हैं। [34]इस ग्रन्थ के अनुसार सम्राट् सुधन्वा आचार्य शङ्कर के समकालीन नरेश थे।[35] राजा सुधन्वा दक्षिणी अवन्ति के शासक थे। माहिष्मती नगरी उनकी राजधानी थी जो कि वर्तमान काल में मध्य प्रदेश के नीमाड़ जनपद में महेश्वर नामक स्थान के रूप में ज्ञात है। इसी नगरी में आचार्य शङ्कर का शास्त्रार्थ धुरंधर मीमांसक मण्डन मिश्र के साथ हुआ था। प्रसिद्ध राजस्थानी इतिहासकार श्यामल दास ने अपने 'वीर विनोद' नामक मेवाड़ के इतिहासग्रन्थ में माहिष्मती पर राज्य करने वाले चौहान राजवंश की एक प्राचीन सूची प्रस्तुत की है जिसमें प्रथम शासक चाहमान की छठवीं पीढ़ी में सुधन्वा तथा 41वीं पीढ़ी में वासुदेव आते हैं। इस ग्रन्थ की प्रथम आवृत्ति 1886 ई० में प्रकाशित हुई थी। चौहान राजवंश के एक अन्य इतिहासवेत्ता डॉ० दशरथ शर्मा ने अपने ग्रन्थ 'अर्ली चौहान डायनेस्टीज' में अभिलेखीय साक्ष्यों के आलोक में राजा वासुदेव से लेकर उनकी 22वीं पीढ़ी में आने वाले दिग्विजयी दिल्ली सम्राट् पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) तक की एक सूची प्रस्तुत की है। डॉ० शर्मा की इस सूची के अनुसार वासुदेव का

राज्यारम्भ ईसवी सन् 551 तथा पृथ्वीराज चौहान का राज्यावसान ईसवी सन् 1192 में हुआ था। इस अवधि में कुल 22 पीढ़ी के राजाओं ने 641 वर्ष राज्य किया। दूसरी ओर श्यामल दास की सूची के अनुसार वासुदेव के एक अन्य पुत्र की शाखा में उनकी 14वीं पीढ़ी में गोगादेव हुए जो 1026 ई० सन् में वीरगति को प्राप्त हुए। वासुदेव की इस शाखा की 14 पीढ़ी के राजाओं ने कुल 475 वर्ष राज्य किया। इन दोनों शाखाओं के राजाओं के औसत के अनुसार प्रत्येक पीढ़ी के राजाओं का औसत शासनकाल पूर्ण वर्षों में लगभग 30 वर्ष प्राप्त होता है। राजा सुधन्वा की 36वीं पीढ़ी में वासुदेव आते हैं जिनका राज्यारम्भ ई० सन् 551 में हुआ था अतः उनसे 35 पीढ़ी पूर्व के राजा सुधन्वा का राज्यारम्भ काल ईसवी सन् पूर्व 500 प्राप्त होता है। (551 ई० + 35x30 वर्ष)। ऐसी स्थिति में जबकि 550 ईसवी सन् में महाराज सुधन्वा से उनकी 36वीं पीढ़ी में आनेवाला अपत्य राज्य कर रहा था तब राजा सुधन्वा के समकालीन आदिशङ्कराचार्य का आविर्भाव काल 788 ई० क्योंकर हो सकता है।

2. **मठाम्नाय-महानुशासनम्**—यह ग्रन्थ आदिशङ्कराचार्य द्वारा प्रणीत है तथा शृङ्गगिरिमठ के लिए प्रमाणभूत है। [36]इसमें भी राजा सुधन्वा का उल्लेख आदिशङ्कराचार्य ने किया है। ऐसी स्थिति में लगभग 500 ई० पू० में अभिषिक्त सुधन्वा के समकालीन आदिशङ्कराचार्य का आविर्भाव काल 788 ई० कैसे माना जा सकता है?

3. **गुरुवंश काव्यम्**—यह ग्रन्थ शृङ्गगिरि के पूर्व शङ्कराचार्य श्रीमद्सच्चिदानन्द भारती स्वामी (आचार्यत्व काल 1705 ई० सन् से 1741 ई० सन्) के सभा पण्डित काशी लक्ष्मण शास्त्री द्वारा लगभग 1735 ई० सन् में लिखा गया था। [37]इस ग्रन्थ में कहा गया है कि शृङ्गगिरि मठ के 13वें आचार्य नरसिंह भारती चक्रवर्तियों में धुरन्धर वेदविद्यानिष्णात्, सम्वत् प्रवर्तक विक्रमादित्य के समकालीन थे। 'महान तपस्वी' में दी गई आचार्यावाली के अनुसार यह 13वें आचार्य नरसिंह भरती आदिशङ्कराचार्य के जन्म के 720 वर्ष बाद शृङ्गेरी के आचार्य बने। वर्तमान काल में विक्रमादित्य नामधारी दो राजाओं के संवत् प्रसिद्ध हैं—प्रथम विक्रम संवत् जिसका प्रवर्तन उज्जैन नरेश विक्रमादित्य ने ई० पू० 58 में किया था तथा दूसरा [38]चालुक्य विक्रम संवत् जिसका प्रवर्तन कल्याणी नरेश चालुक्य विक्रमादित्य (षष्ठ) ने 11 फरवरी 1076 ई० सन् में किया था। उज्जैन नरेश विक्रमादित्य का समकालीन नरसिंह भारती को मानने पर आदिशङ्कराचार्य का आविर्भाव काल उनसे 720 वर्ष पूर्व अर्थात् ई० पू० 8वीं सदी

तथा चालुक्य विक्रम का समकालीन मानने पर ई० सन् की चौथी सदी का पूर्वार्द्ध सिद्ध होता है जबकि शृङ्गगिरिमठ की तथाकथित अर्वाचीन मान्यता के अनुसार आदि शङ्कराचार्य का जन्मकाल 788 ई० माना जाता है, इस प्रहेलिका का समाधान क्या है? [38]गुरुवंश काव्यम् से ज्ञात होता है कि पेशवा बाजीराव के कर्णाटक अभियान काल (ईसवी सन् 1726-27) में पेशवा की सेना द्वारा शृङ्गगिरि मठ को मटियामेट कर दिया गया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि गुरुवंश काव्यम् के लिखे जाने के समय तक शृङ्गगिरिमठ के सभी अभिलेख व प्रमाण समाप्त हो चुके थे।

[39]शृङ्गगिरि के शङ्कराचार्य सच्चिदानन्द भारती का टीपू सुल्तान के साथ मधुर सम्बन्ध था जिसकी पुष्टि सुल्तान द्वारा 1793 ई० में उनको लिखे एक पत्र से होती है। टीपू सुल्तान ने इन आचार्य को मुकुट आदि भेंट किया था। टीपू सुल्तान के साथ उनका यह सम्बन्ध ही मठ के विनाश का पुनः कारण बना। [40]1791 ई० में मराठा सरदार रघुनाथ राव पटवर्द्धन के सैनिकों ने शृङ्गगिरि मठ को पुनः जला कर नष्ट कर दिया। ऐसी स्थिति में शृङ्गगिरि मठ के प्राचीन अभिलेखों के बचे होने की कल्पना करना कहाँ तक उचित है?

4. श्री शङ्कराचार्य चरित्रम्—यह ग्रन्थ महीसूर (मैसूर) राज्य के तत्कालीन पंडित धर्माधिकारी श्री वेंकट सुब्रह्मण्यम् शास्त्री के तनुज श्री वेंकटाचल शर्मा द्वारा 1914 ई० सन् में लिखा गया था। इस ग्रन्थ में इस बात का उल्लेख है कि विद्याशङ्कर भारती नामक शृङ्गगिरिमठ के एक शङ्कराचार्य का जन्म शालिवाहन शक सम्वत् 421 माघ कृष्ण चतुर्दशी तुल्य ई० सन् 499 को मलय देश में हुआ था। ये अत्यधिक प्रतिभाशाली होने तथा भारत भूमण्डल के समस्त वादियों को शास्त्रार्थ में परास्त कर देने के कारण द्वितीय शङ्कर नाम से प्रसिद्ध हुए। ये शालिवाहन शक संवत् 491 कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी शुक्रवार तुल्य ईसवी सन् 569 में कीकट में ब्रह्मलीन हुए। ऐसी स्थिति में आदिशङ्कराचार्य का जन्म ई० सन् 788 में होना कैसे सम्भव है?

5. शृङ्गगिरि मठ की प्राचीन सूची—स्वामी विद्यारण्य कृत 'पंचदशी' नामक ग्रन्थ की पंडित पीताम्बर कृत ब्रज-भाषा की एक टीका निर्णय सागर प्रेस बम्बई (सम्प्रति मुम्बई) से विक्रम संवत् (गु०) 1953 तुल्य ई० सन् 1897 में छपी थी। इस टीका की भूमिका में उस समय तक के शृङ्गगिरिमठ के 56 आचार्यों की सूची प्रकाशित की गई है, जबकि शृङ्गगिरि मठ की वर्तमान सूची में अब तक हुए कुल 35 आचार्यों के ही नाम प्राप्त होते हैं, इस विरोधाभास का समाधान क्या है?

बिन्दु-8

ईसवी सन् पूर्व 521 से प्रवर्तित संवत् से सम्बन्धित अभिलेखीय साक्ष्य

० पूर्वपक्ष

ईसवी सन् पूर्व 521 से प्रवर्तित संवत् का क्या कोई अभिलेखीय प्रमाण है?

उत्तरपक्ष

ईसवी सन् पूर्व 521 से प्रवर्तित संवत् का उल्लेख हमें सम्राट् अशोक मौर्य के ब्रह्मगिरि, रूपनाथ एवं सहरसा के लघु शिलाभिलेखों में प्राप्त होता है। अशोक के शाहबाजगाढ़ी अभिलेख में कहा गया है कि अशोक ने अभिषिक्त होने के ढाई वर्ष बाद कलिंग पर विजय प्राप्त किया। यह सर्वविदित तथ्य है कि कलिंग विजय के पश्चात् ही अशोक बौद्ध मतावलम्बी हो गया। उसके ब्रह्मगिरि अभिलेख से ज्ञात होता है कि संवत् 256 तक अशोक को बौद्ध मत अपनाये ढाई वर्ष बीत चुके थे जिससे यह स्पष्ट होता है कि यह अभिलेख अशोक के राज्याभिषेक के पाँच वर्ष बाद लिखा गया। इस आधार पर सम्राट् अशोक का राज्याभिषेक उक्त संवत् के गत 251वें शक में होना निश्चित होता है। डॉ० विद्याधर महाजन के अनुसार अशोक का राज्याभिषेक ई० पू० 269 में हुआ था। इससे प्रकट होता है कि उक्त गत सम्वत् का परिगणन ई० पू० 269 से 251 वर्ष पूर्व अर्थात् ई० पू० 520 में हुआ था। यहाँ पर ई० सन् तथा उक्त सम्वत् में 520 वर्ष का अन्तर प्राप्त होता है। इस आधार पर उक्त सम्वत् का प्रवर्तन ई० सन् पूर्व का 521वाँ वर्ष सिद्ध होता है जिस प्रकार से विक्रम संवत् तथा ईसवीय सन् के मध्य 57 वर्ष का अन्तर प्राप्त होने पर विक्रम सम्वत् का प्रवर्तन ईसवी सन् पूर्व 58 माना जाता है। डॉ० भण्डारकर इस संवत् को गौतम बुद्ध के जन्म से सम्बन्धित किसी घटना से जुड़ा मानते हैं परन्तु उनका मत उचित नहीं है। यह संवत् विक्रमादित्य=चण्डप्रद्योत के राज्याभिषेक से जुड़ा है।

बिन्दु-9

कम्बोज राजा इन्द्रवर्मन् के उत्तराधिकारी के अभिलेख के शङ्कर

० पूर्वपक्ष

कम्बोज राजा जयवर्मन् (तृतीय) के उत्तराधिकारी इन्द्रवर्मन् के राजगुरु शिवसोम थे। शिवसोम के गुरु भगवत्पाद शङ्कर थे। राजा इन्द्रवर्मन् (877 से 889 ई०) का राज्याभिषेक 877 ई० सन् में हुआ था। इनके शिलालेख में शिवसोम के गुरु के लिये भगवत् शब्द का प्रयोग आचार्य शङ्कर की ओर सङ्केत करता है। इस आधार पर यदि आदिशङ्कराचार्य का समय ईसवी सन् के नवम् शतक का प्रारम्भ होना चाहिए क्योंकि कोई भी पीठस्थ शङ्कराचार्य अपने नाम के साथ उपाधि के रूप में ही शङ्कराचार्य लिखते हैं नामात्मना नहीं।

उत्तरपक्ष

[42]इतिहासकार डॉ० विद्याधर महाजन के ग्रन्थ 'प्राचीन भारत का इतिहास' तथा [43]बलदेव सहाय के ग्रन्थ 'भारतीय जहाजरानी–ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य' से ज्ञात होता है कि कम्बोज (=फूनान) के राजवंश का संस्थापक कौण्डिन्य भारत का रहनेवाला था जिसने समुद्र मार्ग से फूनान जाकर वहाँ एक नये राजवंश की नींव डाली। [44]'महावंश' से ज्ञात होता है कि कलिंग से निर्वासित राजकुमार विजय ने ई०पू० 5वीं सदी में समुद्र मार्ग से श्रीलंका जाकर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कलिंग (सम्प्रति उड़ीसा प्रान्त) से पूर्व समुद्र तट से समुद्र मार्ग का अवलम्बन लेकर कम्बोज व श्रीलंका में जाकर दो भारतीय वीरों ने दो अलग-अलग राजवंशों की नींव डाली।

गोवर्द्धनमठ-पुरी की आचार्यावली से ज्ञात होता है कि ई० सन् 871 से ई० सन् 885 तक उस पीठ पर शङ्कर नामक 81वें आचार्य शङ्कराचार्य के पद पर विराजमान थे। निश्चित रूप से शिवसोम के गुरु यही भगवत् शङ्कर थे। भगवत् विशेषण का प्रयोग सभी शङ्कराचार्यों के शिष्यों द्वारा अपने गुरुओं के सम्मानार्थ किया जाता है। कलिंग से कम्बोज राजवंश का घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण यह निश्चित है कि गोवर्द्धनमठ-पुरी के ही 81वें शङ्कराचार्य शङ्कर के शिवसोम शिष्य थे।

[45]उपर्युक्त अभिलेख में यह कहा गया है कि शिवसोम ने 'भगवत् शङ्कर के अधीन शास्त्र पढ़े जिनके चरणों में ऋषि भी सिर झुकाते थे।' आदिशङ्कराचार्य के पास न तो एक स्थान पर बैठ कर किसी को शास्त्र पढ़ाने का समय था और न ही उनके किसी शिष्य का नाम शिवसोम प्राप्त होता है। आदिशङ्कराचार्य के समय भारत के विद्वानों ने उनके साथ जमकर शास्त्रार्थ किया था और उन सभी वादियों को आचार्य ने परास्त कर दिया था जिसके कारण उनके द्वारा स्थापित चार पीठों के शङ्कराचार्यों को उनकी प्रतिमूर्ति मानकर ऋषिगण भी प्रणाम करने लगे। अतः यह अन्तिम रूप से कहा जा सकता है कि पुरी के 81वें शङ्कराचार्य शङ्कर से शिवसोम ने शास्त्र पढ़ा था।

यह मान लेना कि आदिशङ्कराचार्य के पश्चात् शङ्कर नामधारी कोई अन्य परिव्राजक शङ्कराचार्य हुआ ही नहीं, कोरा भ्रम है। श्री गोवर्द्धनमठ-पुरी के 29वें व 81वें शङ्कराचार्य का नाम शङ्कर था। शृङ्गगिरि मठ की एक अपेक्षाकृत प्राचीन सूची में शङ्कर नाम के 8 तथा विद्याशङ्कर नाम के 2 आचार्यों के नाम उपलब्ध हैं। शृङ्गगिरि मठ की अर्वाचीन सूची में 9वें आचार्य का नाम विद्याशङ्कर तथा 16वें आचार्य का नाम शङ्कर आनन्द है। श्री शारदामठ-द्वारका के 36वें आचार्य का नाम विद्याशङ्कर था। अतएव शङ्कर नामधारी विभिन्न शङ्कराचार्यों के काल को आदिशङ्कराचार्य का आविर्भाव काल मान लेना एक भयंकर भूल है।

बिन्दु-*10*

शङ्कर नामक शङ्कराचार्यों के आविर्भाव-काल

० पूर्वपक्ष

हमें तो शङ्कर नामधारी एक ही शङ्कराचार्य का आविर्भाव काल गत कलि संवत् 3889 विभत वर्ष तथा कैलाश गमन गत कलि संवत् 3921 वैशाख पूर्णिमा अर्थात् ई० सन् 788-820 ज्ञात है, यदि शङ्कर नामधारी अन्य शङ्कराचार्य हुए हैं तो उनमें से किसी के आविर्भाव काल का कहीं तो उल्लेख होना चाहिए?

उत्तरपक्ष

आपकी जानकारी ही ज्ञान की अन्तिम सीमा नहीं है, अस्तु आपके भ्रमोच्छेदन हेतु कुछ शङ्कर नामधारी शङ्कराचार्यों का आविर्भाव काल प्रस्तुत कर रहा हूँ :-

1. शारदामठ-द्वारका के द्वितीय शङ्कराचार्य द्वारा लिखित शङ्कर विजय में आदि शङ्कराचार्य का आविर्भाव-काल निम्न प्रकार से वर्णित है।

"ततः सा दशम मासि सम्पूर्णशुभलक्षणे।
षड्विंशशतके श्रीमद्युधिष्ठिरशकस्य वै।।
एकत्रिंशेऽथवर्षे तु हायने नन्दने शुभे।
मेषराशिं गते सूर्ये वैशाखे मासि शोभने।।
शुक्ले पक्षे (च) पञ्चम्यां तिथौ भास्करवासरे।
पुनर्वसुगते चन्द्रे (सु) लग्ने कर्कटाह्वये।।
मध्याह्ने चाभिजिन्नाम मुहूर्ते शुभवीक्षिते।
स्वोच्चस्थे केन्द्रस्थे च गुरौमन्दे कुजे रवौ।।
निजतुंगगते (शुक्रे) रविणा संगते बुधे।
प्रासूत तनयं साध्वी गिरिजेव षडाननम्।।

अर्थात् युधिष्ठिर शक सम्वत् 2631 (= ई. सन् पूर्व 507) नन्दन वर्ष वैशाख शुक्ल पञ्चमी रविवार को आदिशङ्कराचार्य का जन्म हुआ।

2. [47]सदानन्द स्वामी कृत शङ्करदिग्विजय ग्रन्थ के अनुसार (गत) कलि सम्वत् 2771 (= ईसवी सन् पूर्व 330) सर्वजित् नामक संवत्सर में पौष मास में जब पाँच ग्रह उच्चस्थिति में थे तब शुभ लग्न में शङ्कराचार्य का अवतार हुआ। गणना करने पर उक्त काल में पाँच ग्रहों का उच्च स्थानीय योग प्रमाणित हुआ।

3. [48]माधवीय शङ्कर दिग्विजय ग्रन्थ के अनुसार शुभ ग्रहों से युक्त शुभ लग्न में और शुभ राशि से देखे जाने पर तथा सूर्य, मङ्गल और शनि के उच्च होने पर तथा गुरु के केन्द्र में स्थित होने पर शङ्कराचार्य का जन्म हुआ।

सूर्य मेष राशि में शनि तुला राशि में व मङ्गल मकर राशि में स्थित होने पर उच्च के माने जाते हैं। कुण्डली के प्रथम, चतुर्थ, सप्तम तथा दशम स्थान को केन्द्र कहते हैं।

[49]गणना करने पर यह सिद्ध हुआ कि (गत) कलि संवत् 2815 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 286 में वैशाख शुक्ल पञ्चमी के दिन गुरु कर्क में, सूर्य मेष में, शनि तुला में तथा चन्द्र व मङ्गल मकर में स्थित थे।

4. [50]दक्षिण देशस्थ स्कन्दपुर नरेश की हस्तलिखित पुस्तक 'कोङ्ग देश का इतिहास' के अनुसार ईसवी सन् 178 में उपस्थित राजा विक्रमदेव के शासनकाल में शङ्कराचार्य का जन्म हुआ था।

5. [51]महानुभाव सम्प्रदाय के ग्रन्थ 'दर्शन प्रकाश' में, जिसका रचना काल 1638 ई० है एक प्राचीन ग्रन्थ 'शङ्कर पद्धति' के अनुसार लिखा गया है—

युग्म पयोधि रसामिति शाके रौद्रक वत्सर ऊर्जक मासे...
शङ्कर लोकमगान्निजदेहं हेमगिरौ प्रविहाय हठेन'

अर्थात् इन शङ्कर का कैलाश गमन शक संवत् 142 तुल्य ईसवी सन् 220 में हुआ था। परन्तु यदि 'रसा' का अर्थ पृथ्वी = 1 न कर रसातल = 6 किया जाय तब इनका कैलाश गमन काल शक संवत् 642 तुल्य ईसवी सन् 720 प्राप्त होता है। सम्भवतः स्कन्दपुर नरेश द्वारा वर्णित शङ्कर और महानुभाव सम्प्रदाय के ग्रन्थ में वर्णित शङ्कर अभिन्न हैं।

6. [52]काशीनाथ त्र्यम्बक तेलंग के अनुसार केरलोत्पत्ति नामक ग्रन्थ में शङ्कराचार्य का जन्म ईसवी सन् 400 लिखा हैं। वहाँ पर यह भी उल्लेख है कि ये शङ्कराचार्य 38 वर्ष तक इस धराधाम पर रहे।

7. [53]शङ्कर (द्वितीय) के नाम से विख्यात विद्याशङ्कर भारती नामक शङ्कराचार्य का जन्म शालिवाहन शक संवत् 421 तुल्य ईसवी सन् 499 प्रमाथि वर्ष में माघकृष्ण चतुर्दशी को मलयाक में तथा ब्रह्मीभाव शालिवाहन शक सम्वत् 491 तुल्य ईसवी सन् 569 विरोधी वर्ष में कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी शुक्रवार के दिन कीकट में हुआ। ये श‍ृङ्गगिरि मठ के अधिपति विद्यानृसिंहपतिराड् भारती के शिष्य थे।

8. [54]वेणु ग्राम के गोविन्द भट्ट हेरलेकर द्वारा उपलब्ध करायी गई बाल-बोध शैली में लिखित तीन पत्रों वाली अनाम लेखक की एक पुस्तिका के अनुसार—

दुष्टाचारविनाशाय प्रादुर्भूतो महीतले
स एव शङ्कराचार्यः साक्षात् कैवल्य नायकः।
निधिनागे वह्न्यब्दे विभवे शङ्करोदयः।

तथा एक अन्य स्रोत के अनुसार—

कल्यब्दे चन्द्रनेताङ्क वह्न्यब्दे गुहा प्रवेशः,
वैशाखे पूर्णिमायां तु शङ्करः शिवतामगाद्।

अर्थात् गत कलि संवत् 3889 तुल्य ईसवी सन् 788 विभव नामक वर्ष में शङ्कराचार्य का जन्म तथा (गत) कलि संवत् 3921 तुल्य ईसवी सन् 820 वैशाख पूर्णिमा के दिन शिवलोक गमन हुआ। इसी पुस्तिका का उद्धरण देकर बेलगाम के विष्णु महादेव

पाठक ने इण्डियन एण्टीक्वेरी खण्ड 11 पृष्ठ 263 (जून 1882 अङ्क) में आदिशङ्कराचार्य का आविर्भाव काल 788 ई० सन् व कैलाश गमन 820 ई० सन् माना है।

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट हो जाता है कि आदिशङ्कराचार्य की जीवनी लिखते समय जिस लेखक के पास जिस किसी भी शङ्कराचार्य का जीवनकाल या ब्रह्मलीन काल उपलब्ध था उसने उसी काल को आदिशङ्कराचार्य का काल मानकर उनके जीवन चरित्र में उस काल का समावेश कर उनके आविर्भाव काल की गुत्थी को अत्यधिक उलझा दिया। परन्तु इन विभिन्न कालों के सूक्ष्म अवलोकन से हमें स्पष्ट हो जाता है कि चित्सुखाचार्य द्वारा उल्लिखित काल आदिशङ्कराचार्य का काल तथा अन्यों द्वारा उल्लिखित अन्य काल परवर्ती शङ्कराचार्यों से सम्बन्धित है।

बिन्दु-*11*

शङ्कराचार्य की उपाधि

० पूर्वपक्ष

चारों मठों का जो एक साथ नेतृत्व करे वे शङ्कराचार्य पदोपाधिक होते हैं और प्रत्येक के आचार्य सुरेश्वराचार्य, तोटकाचार्य, पद्मपादाचार्य और हस्तमलकाचार्य होते हैं। ऐसी स्थिति में प्रत्येक पीठ पर बैठे हुए आचार्य को शङ्कराचार्य की पदवी किस प्रकार? यह चिन्त्य है।

उत्तरपक्ष

आदिशङ्कराचार्य ने अपने जीवन के अन्तिम काल में मठाम्नाय-महानुशासनम् का विधान कर यह निश्चित कर दिया कि—[55]'चारों आम्नाय मठों के आचार्यों को चाहिए कि वे लोगों से स्वधर्म का आचरण करावें तथा अन्यथा आचरण करनेवालों को अनुशासित करें। शुद्ध मर्यादा वाला संन्यासी चारों पीठों की सत्ता का नियमानुसार अलग-अलग प्रयोग करे। जो पवित्र, जितेन्द्रिय, वेद तथा उसके अङ्गों आदि में पारङ्गत हो; ब्रह्मज्ञानी हो और सभी शास्त्रों में समन्वय की बुद्धि रखने वाला हो, वह मेरे पीठ का अधिकारी है। उक्त लक्षणों से सम्पन्न संन्यासी मेरे पीठ पर आसीन हो तो उसे साक्षात् मुझे समझना चाहिए इसमें 'यस्यदेव' इत्यादि श्रुति प्रमाण है। कलियुग में मैं जगद्गुरु हूँ।'

उपर्युक्त विधान के फलस्वरूप चारों पीठों के आचार्य आदिशङ्कराचार्य के कैलाश गमन के पश्चात् उनके साक्षात् स्वारूप अर्थात् शङ्कराचार्य पदोपाधिक हो गये। चारों मठों का जो एक साथ नेतृत्व करे वह ही शङ्कराचार्य पदोपाधिक हो सकते हैं, यह कहना उचित नहीं है। चारों पीठों के पीठाधिपति तो एक ही काल में एक ही साथ आदिशङ्कराचार्य भी न थे। [56]ज्योतिष्पीठ बदरिकाश्रम की स्थापना ई०पू० 492 ज्येष्ठमास में, शारदापीठ-द्वारका की स्थापना ई०पू० 490 कार्तिक मास में, शृङ्गगिरिपीठ की स्थापना ई०पू० 490 फाल्गुन मास में तथा [57]गोवर्द्धनपीठ-पुरी की स्थापना ई०पू० 486 कार्तिक मास में आदिशङ्कराचार्य द्वारा की गई थी। [58]ई०पू० 489 में आदिशङ्कराचार्य ने शारदामठ-द्वारका के आचार्य पद पर सुरेश्वराचार्य को अभिषिक्त कर दिया। उस समय तक श्रीगोवर्द्धनमठ की स्थापना नहीं हुई थी। [59]ई०पू० 483 में गोवर्द्धनमठ के आचार्य पद पर पद्मपादाचार्य तथा [60]ई०पू० 484 में ज्योतिर्मठ के आचार्य पद पर तोटकाचार्य व शृङ्गगिरि के आचार्य पद पर हस्तमालकाचार्य का उन्होंने अभिषेक कर दिया। उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि एक ही काल में एक ही साथ अधिक से अधिक तीन मठों के ही अधिपति आदिशङ्कराचार्य भी रहे चार के नहीं। पूर्व पक्षी की कसौटी पर तो आदि आचार्य शङ्कर भी शङ्कराचार्य नहीं सिद्ध होते!

बिन्दु-*12*

चारों मठों के प्रथम आचार्यों के ग्रन्थ और शङ्कराचार्य उपाधि

० पूर्वपक्ष

सुरेश्वराचार्य, पद्मपादाचार्य, तोटकाचार्य एवं हस्तमलकाचार्य ने स्वरचित ग्रन्थों में अपने नाम के बाद शङ्कराचार्य पद का प्रयोग क्यों नहीं किया है?

उत्तरपक्ष

आदिशङ्कराचार्य ने मठाम्नाय-महानुशासनम् की रचना अपने जीवन के अन्तिम काल में की थी। इस ग्रन्थ के द्वारा आचार्य शङ्कर ने यह विधान किया कि उनके

कैलाश गमन के पश्चात् उनके द्वारा स्थापित चार आम्नाय पीठों के पीठाधीश्वर स्वयं उनकी प्रतिमूर्ति समझे जायेंगे अर्थात् शङ्कराचार्य कहलायेंगे क्योंकि मठाम्नाय-महानुशासनम् में आचार्य का स्पष्ट वचन है कि कलियुगपर्यन्त वे जगद्गुरु रहेंगे। सम्राट् सुधन्वा के ताम्रपत्र से यह प्रमाणित होता है कि आदिशङ्कराचार्य विश्वेश्वर तथा जगद्गुरु इत्यादि उपाधियों से विभूषित थे। यह सर्वविदित है कि आचार्य शङ्कर के उपर्युक्त चारों शिष्यों ने आचार्य के जीवनकाल में ही अपने-अपने ग्रन्थों का सृजन कर लिया था जबकि शङ्कराचार्य की उपाधि से वे आचार्य शङ्कर के कैलाश गमन के पश्चात् ही विभूषित हुए। ऐसी स्थिति में शङ्कराचार्य पद न धारण करने की स्थिति में वे स्वरचित ग्रन्थों में अपने नाम के पश्चात् शङ्कराचार्य कैसे लिखते?

बिन्दु-*13*

शङ्कराचार्य उपाधि का प्रादुर्भाव-काल

० पूर्वपक्ष

शङ्कराचार्य पदवी तो कुछ शतकों से हुई है। विद्यारण्य आदि ने अपने किसी ग्रन्थ में शङ्कराचार्य नाम या उपनाम नहीं लिखा है।

उत्तरपक्ष

शङ्कराचार्य उपाधि का प्रादुर्भाव तो आदिशङ्कराचार्य के कैलाश गमन के दिन से ही ई० पू० 475 वर्ष से मठाम्नाय-महानुशासनम् के निर्देशानुसार हुआ। नेपाल के राजा वृषदेव वर्मा तथा वरदेव के शासनकाल में शङ्कराचार्यों के नेपाल जाने का उल्लेख है। [61]राजा वृषदेव वर्मा की जिस समय मृत्यु हुई थी उसी समय आदिशङ्कराचार्य नेपाल ई०पू० 487 में पहुँचे थे। एक अन्य शङ्कराचार्य राजा वरदेव के शासनकाल में कलि संवत् 3123 तुल्य ई० सन् 522 में नेपाल यह देखने गये थे कि आदिशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित व्यवस्था वहाँ चल रही थी कि नहीं। अभिलेखों के आधार पर राजा वरदेव की उपस्थिति ई० सन् 22 में सिद्ध होती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि शङ्कराचार्य की उपाधि का प्रचलन बहुत पहले से है न कि कुछ शतकों से।

[62]विद्यारण्य स्वामी की एक रचना है 'दृग्दृश्यविवेक'। इस ग्रन्थ की आनन्द ज्ञान कृत टीका सहित एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति में इसे शङ्कराचार्य रचित कहा

गया है। शृंगेरी मठ के अभिलेखों के अनुसार विद्यारण्य स्वामी ने 1331 ई० सन् में संन्यास ग्रहण किया था 1380 ई० सन् से 1386 ई० सन् तक वे शृङ्गगिरिमठ के शङ्कराचार्य रहे। दृग्दृश्यविवेक सम्भवतः इन्होंने शङ्कराचार्य बनने के बाद लिखा था जिसके कारण आनन्दज्ञान कृत टीका में इस ग्रन्थ को शङ्कराचार्य विरचित लिखा गया है परन्तु शेष ग्रन्थ निश्चित रूप से उनके शङ्कराचार्य बनने के पूर्व के लिखे हुये हैं। जिसके कारण पञ्चदशी आदि ग्रन्थों में इन ग्रन्थों को शङ्कराचार्य विरचित न लिख कर स्वामी विद्यारण्य मुनि विरचित कहा गया है।

[63]'देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्' शङ्कराचार्य विरचित है। स्तोत्र में इसके रचयिता शङ्कराचार्य ने अपनी आयु पचासी वर्ष से अधिक कहा है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस स्तोत्र के रचनाकार आदिशङ्कराचार्य न होकर अन्य परवर्ती शङ्कराचार्य थे। बहुसंख्यक विद्वान् इस स्तोत्र के रचयिता विद्यारण्य मुनि को मानते हैं।

मठाम्नाय-महानुशासनम्, नेपाल की राजवंशावली, देव्यपराधक्षमापन स्तोत्रम् एवं दृग्दृश्यविवेक की आनन्दज्ञान कृत टीका सहित उसकी प्राचीन पाण्डुलिपि के प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है कि चार आम्नाय पीठों, शारदामठ-द्वारका, गोवर्द्धनमठ-पुरी, ज्योतिर्मठ-बदरिकाश्रम तथा शृङ्गगिरि मठ-के पीठाधीश्वरों द्वारा शङ्कराचार्य लिखने की परम्परा आदिशङ्कराचार्य के कैलाश गमन के दिन से ई० पू० 475 से ही चली आ रही है।

बिन्दु-*14*

कार्षापण मुद्रा के प्रमाण से आदिशङ्कराचार्य का आविर्भाव-काल

० पूर्वपक्ष

ब्रह्म-सूत्र के तर्कपाद भाष्य में बौद्धमत निराकरण के अवसर पर आदिशङ्कराचार्य ने एक श्लोकार्द्ध–

'यदन्तर्ज्ञेयरूपं तद् बहिर्वदवभासते'

उद्धृत किया है जो कि बौद्धाचार्य दिङ्नाग की 'आलम्बन परीक्षा' में इस प्रकार है–

'यदन्तर्ज्ञेयरूपं तद् बहिर्वदवभासते।
सोऽर्थो विज्ञान रूपत्वात् तत्प्रत्ययतयापि च' ।।

वहीं तर्कपाद में शङ्कराचार्य ने एक अन्य श्लोकार्द्ध–

'सहोपलम्भनियमादभेदो विषयविज्ञानयोः'

उद्धृत किया है जो कि बौद्धाचार्य धर्मकीर्ति के ग्रन्थ 'वाद न्याय' में इस प्रकार है–

'सहोपलम्भनियमादभेदो नीलतद्धियोः
भेदश्च भ्रान्तविज्ञानैर्दृश्यतेन्दाविवाद्वये।'

इसका पूर्वार्द्ध प्रमाणविनिश्चय में तथा उत्तरार्द्ध प्रमाण वार्तिक में उपलब्ध होता है। कोई कह सकता है कि यहाँ के पूर्वपक्ष श्लोक को धर्मकीर्ति ने उठाया। अपने सिद्धान्तार्थ से तो यह केवल इतिहास पर धूल डालना ही नहीं बल्कि एक सुप्रतिष्ठित विद्वान् पर चोरी का कलङ्क लगाना ही है। दिङ्नाग ईसवी सन् की 5वीं सदी तथा धर्मकीर्ति ईसवी सन् की 7वीं सदी में हुए थे। ऐसी स्थिति में दिङ्नाग और धर्मकीर्ति के श्लोकों को उद्धृत करने वाले आदिशङ्कराचार्य ईसा की 8वीं सदी के ही सिद्ध होते हैं।

उत्तरपक्ष

मात्र पंक्तिसाम्य के आधार पर कौन पूर्ववर्ती है कौन अनुवर्ती है यह निर्णय नहीं किया जा सकता है। जब कुछ अक्षरशः और कुछ शब्दशः उद्धरण दो विद्वानों के ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं तब उनमें से कौन पूर्ववर्ती है और कौन अनुवर्ती इसका निर्धारण करने के लिये हमें उन विद्वानों की कृतियों में उपलब्ध अन्य तथ्यों को अभिलेखीय प्रमाणों की कसौटी पर कस कर उनके कालों का विनिश्चयन करना पड़ता है।

आदिशङ्कराचार्य ने अपने माण्डूक्य उपनिषद् भाष्य में आत्मा के चार पादों की व्याख्या करते हुए कहा है—

[64]'सोऽयमात्मोङ्काराभिधेयः
परापरत्वेन व्यस्थितश्चतुष्पात्कार्षापणवन्न गौरिवेति।'

अर्थात् 'ओंकार नाम से कहा जाने वाला तथा पर और अपररूप से व्यवस्थित वह यह आत्मा कार्षापण के समान चार पाद (अंश) वाला है, गौ के समान नहीं'।

कार्षापण प्राचीन काल में भारतवर्ष में प्रचलित एक मुद्रा थी। कार्षापण मुद्रा

का चतुर्थांश पाद कहलाता था। आदिशङ्कराचार्य ने सर्वसामान्य को आत्मा के चार पादों का वास्तविक तात्पर्य समझाने हेतु जिस प्रकार से कार्षापण के पाद का उल्लेख किया है उससे यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि भाष्यकार के समय में कार्षापण सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचलित मुद्रा थी।

[65]कनिंघम के अनुसार कार्षापण मुद्रा का प्रचलन भारतवर्ष में ईसवी सन् पूर्व 1000 से प्रारम्भ हुआ। डॉ० अनन्त सदाशिव अल्तेकर, डॉ० एस० के० चक्रवर्ती तथा डॉ० वासुदेव उपाध्याय कार्षापण मुद्रा का प्रचलन कम-से-कम ई० सन् पूर्व 800 से मानते हैं। पाणिनि के अष्टाध्यायी, पतञ्जलि के महाभाष्य, वात्स्यायन के कामसूत्र, बौद्ध ग्रन्थ महावग्ग, विनय पिटक आदि में कार्षापण का प्रचलित मुद्रा के रूप में उल्लेख है। ईसापूर्व चौथी सदी में चन्द्रगुप्त मौर्य के काल से इस मुद्रा का निर्माण बन्द हो गया तथा इसका स्थान पण नामक मुद्रा ने ले लिया जिसका उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र में है। उत्तर भारत में सम्राट् अशोक एवं उनके परवर्ती काल के उपलब्ध अभिलेखों में कार्षापण मुद्रा का उल्लेख न होना यह प्रमाणित कर देता है कि मौर्यों के समय से ही यह मुद्रा उत्तर भारत में प्रचलन से बाहर हो गयी थी। दक्षिण भारत से प्राप्त रानी नायनिका के नाणेघाट अभिलेख तथा ईश्वरसेन आभीर के नासिक लयण अभिलेख में कार्षापण मुद्रा का उल्लेख मिलता है परन्तु अन्य पश्चात्‌वर्ती अभिलेखों में इस मुद्रा का उल्लेख न मिलना इस बात को प्रमाणित कर देता है कि दक्षिण भारत में भी कार्षापण का प्रचलन ईश्वरसेन आभीर के पश्चात् बन्द हो गया। इतिहासकार इसका काल ई० सन् की द्वितीय सदी का अन्तिम दशक मानते हैं। नवीनतम अनुसन्धानों के आलोक में इसका काल ई० पूर्व ज्ञात हुआ है। ऐसी स्थिति में कार्षापण मुद्रा जिसके समय में सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचलित थी वे आदिशङ्कराचार्य ई० सन् 5वीं एवं 7वीं सदी के दिङ्नाग तथा धर्मकीर्ति के पंक्तियों को कैसे उद्धृत कर सकते हैं? ये पंक्तियाँ या तो आदिशङ्कराचार्य की हैं या किसी पूर्ववर्ती बुद्ध की।

उपर्युक्त विवरणों, तथ्यों एवं विवेचनों के आलोक में श्रीमान् उदयवीर शास्त्री का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि—इस प्रकार यत्किंचित् पंक्तिसाम्य को लेकर उसे धर्मकीर्ति के वचन का उद्धरण मानना ऐतिहासिक तथ्यों के साथ अन्याय है तथा यह सभी विषय दिङ्नाग एवं धर्मकीर्ति आदि के मौलिक चिन्तन नहीं है, उनके पूर्वाचार्यों ने भी इस पर विचार किया है।

बिन्दु-15

स्रुघ्न नगर के प्रमाण से आदिशङ्कराचार्य का आविर्भाव-काल

० पूर्वपक्ष

क्या आदिशङ्कराचार्य कृत ग्रन्थों में ऐसे किसी तथ्य का उल्लेख है जिसके आधार पर दिङ्नाग और धर्मकीर्ति के वे पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं?

उत्तरपक्ष

आदिशङ्कराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में विषयों को सहज बोधगम्य बनाने के लिए कुछ पंक्तियों का सृजन स्थानों एवं राजमार्गों का उल्लेख करते हुए किया है, यथा–

> **[66]अथ प्रत्यवयंवर्तेत तदैकत्र व्यापारेऽन्यत्राव्यापारः स्यात्। न हि देवदत्तः स्रुघ्ने संनिधीयमानस्तदहरेव पाटलिपुत्रेऽपि संनिधीयते। युगपदनेकत्र वृत्तानेकत्वप्रसङ्गः स्यात्। देवदत्तयज्ञदत्तयोरिव स्रुघ्न पाटलिपुत्रनिवासिनोः।**

अर्थात्–यदि कार्य अवयवी प्रत्येक अवयव में रहेगा, तो एक स्थान पर व्यापार होने पर दूसरे स्थान पर व्यापार न होगा। क्योंकि स्रुघ्न में रहता हुआ देवदत्त उसी दिन पाटलिपुत्र में नहीं रह सकता। यदि युगपत् अनेक स्थलों में रहेगा, तो स्रुघ्न और पाटलिपुत्र निवासी देवदत्त और यज्ञदत्त के समान उसमें अनेकत्व का प्रसंग आ जाएगा।'

और भी–

> **[67]योऽपि स्रुघ्नान्मथुरां गत्वा मथुरायाः पाटलिपुत्रं व्रजति सोऽपि स्रुघ्नात्पाटलिपुत्रं यातीति शक्यते वदितुम्। तस्मात् 'प्राणस्तेजसी' ति प्राणसंपृक्तस्याध्यक्षस्यैवैतत्तेजः सहचरितेषु भूतेष्ववस्थानम्।**

अर्थात् जो भी स्रुघ्न से मथुरा जाकर मथुरा से पाटलिपुत्र जाता है वह भी स्रुघ्न से पाटलिपुत्र जाता है ऐसा कहा जा सकता है। इसलिए 'प्राणस्तेजसि' इससे प्राण सम्बद्ध जीव का भी तेज सहचरित भूतों में यह अवस्थान है।

उपर्युक्त दृष्टान्तों से स्वतः द्योतित होता है कि स्रुघ्न और पाटलिपुत्र आदिशङ्कराचार्य के समय के दो प्रसिद्ध नगर थे तथा स्रुघ्न से मथुरा होते हुए पाटलिपुत्र जाने वाला मार्ग उनके समय में एक प्रसिद्ध राजपथ था।

[68]स्रुघ्न की पहचान वर्तमान समय में हरियाणा प्रान्त के यमुनानगर जनपद में जगाधरी के निकट सुघ नामक ग्राम से की जाती है। आज सुघ, मण्डलपुर, दयालगढ़ एवं बुरिया नामक गांव प्राचीन स्रुघ्न नगर की भूमि पर ही बसे हैं। यहाँ से उत्खनन में पायी गयी बुद्धकालीन मुद्राओं-कार्षापण तथा पतञ्जलि के महाभाष्य में उपलब्ध विवरणों से स्पष्ट होता है कि पतञ्जलि एवं गौतम बुद्ध के समय में स्रुघ्न एक प्रसिद्ध नगर था। उत्खनन से प्राप्त सामग्रियों से यह भी ज्ञात होता है कि शुङ्गकाल के अंतिम वर्षों से कुषाणकाल तक स्रुघ्न ह्रासोन्मुख दशा में था और ईसवी सन् की तीसरी सदी में स्रुघ्न नगर पूर्णरूपेण विनष्ट हो चुका था। चीनी यात्री ह्वेनसाङ्ग भी अपने विवरणों में स्रुघ्न नामक क्षेत्र का उल्लेख करते हुए लिखता है कि इस क्षेत्र की राजधानी स्रुघ्न नगर का विनाश उसकी भारत यात्रा के बहुत समय पूर्व हो चुका था।

स्रुघ्न का जीवन्त नगर के रूप में उल्लेख करने वाले आदिशङ्कराचार्य पाँचवीं सदी के दिङ्नाग तथा सातवीं सदी के धर्मकीर्ति के पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। ऐसी स्थिति में उनके द्वारा दिङ्नाग और धर्मकीर्ति की पंक्तियों को उद्धृत करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

बिन्दु-*16*

सुरेश्वराचार्य व धर्मकीर्ति सागरघोष बुद्ध

० पूर्वपक्ष

आदिशङ्कराचार्य ने अपने ग्रन्थ उपदेश-साहस्री में धर्मकीर्ति का एक पूरा श्लोक लिखा है यथा–

'अभिन्नोऽपि हि बुद्ध्यात्मा विपर्यासितदर्शनैः।

ग्राह्यग्राहकसंवित्तिभेदवानिव लक्ष्यते।। (उप. 18/142)

इसी श्लोक को बृहदारण्यक वार्तिक 43/476 में भी पूर्वपक्ष रूप से उठाय गया है, जिसकी व्याख्या में आनन्द गिरि ने इस श्लोक को कीर्तिवाक्य बताया है यह कीर्ति कोई अन्य नहीं धर्मकीर्ति ही थे। एक जगह सुरेश्वराचार्य ने साक्षात् इनका

नाम ले लिया है यथा–

त्रिष्वेव त्वविनाभावादिति यद्धर्मकीर्तिना।
प्रत्यज्ञापि प्रतिज्ञेयं हीयेतासौ न संशयः।। (बृ. वा./43/753)

उत्तरपक्ष

प्राचीन काल में धर्मकीर्ति सागरघोष नामक एक बुद्ध हुए हैं। तिब्बत् में इनकी खूब पूजा की जाती है। [69]इन धर्मकीर्ति सागरघोष बुद्ध का उल्लेख न्यूयार्क से 1939 ई० सन् में प्रकाशित पुस्तक 'द इकोनोग्राफी ऑफ तिब्बतन लामाइज्म' तथा 1986 ई० में दिल्ली से प्रकाशित पुस्तक 'द आदि बुद्ध' में प्राप्त है। 'द आदि बुद्ध' में नौ बुद्धों की एक सूची में इन बुद्ध का नाम सातवें क्रम पर तथा शिखी बुद्ध का नाम नौवें क्रम पर सूचीबद्ध है। शिखी बुद्ध का गौतम बुद्ध ने अपने पूर्ववर्ती बुद्ध के रूप में उल्लेख किया है ऐसी स्थिति में धर्मकीर्ति सागरघोष बुद्ध स्वतः गौतम बुद्ध के पूर्ववर्ती सिद्ध हो जाते हैं। अतएव इसमें रंच मात्र भी सन्देह नहीं कि आदिशङ्कराचार्य के शिष्य सुरेश्वराचार्य द्वारा पूर्वपक्ष के रूप में उठाया गया उद्धरण धर्मकीर्ति सागरघोष नामक बुद्ध का साक्षात् वचन है न कि तथाकथित ईसवी सन् की सातवीं सदी में होने वाले बौद्ध विद्वान् धर्मकीर्ति का। इन बौद्ध विद्वान् धर्मकीर्ति ने भी आचार्य व सुरेश्वराचार्य द्वारा उद्धृत पूर्ववर्ती बुद्ध, धर्मकीर्ति सागरघोष के उपर्युक्त वचनों को अपने ग्रन्थ में संग्रहित किया है। **यह भी न्याय है कि उच्छेद मूल पर किया जाता है शाखा पर नहीं।** अतः आदिशङ्कराचार्य तथा सुरेश्वराचार्य ने पूर्ववर्ती बुद्धों के ही वचनों का खण्डन किया है यही मानना न्यायोचित है।

बिन्दु-*17*

वाचस्पति और दिङ्नाग

० पूर्वपक्ष

अब वाचस्पति मिश्र की "न्यायतात्पर्य टीका" की ये पंक्तियाँ बाँचिये–

"यद्यपि भाष्यकृता कृतव्युत्पादनमेतत्
तथापि दिङ्नागप्रभृतिरर्वाचीनैः कुहेत
सन्तमसमुत्थापनेनाच्छादितं शास्त्रम् ...।"

दिङ्नाग ईसवी सन् की चौथी सदी के अन्त में या 5वीं सदी के प्रारम्भ में हुए थे। वाचस्पति मिश्र ने 'न्यायसूचीनिबन्ध' का रचना काल (विक्रम) संवत् 898 लिखा है। उपर्युक्त पंक्ति में 'अर्वाचीनैः' यह पद विचारणीय है। अर्वाचीन का प्रयोग नव्य अर्थ में होता है, केवल परवर्ती अर्थ हो तो वह स्वतः सिद्ध होने से व्यर्थ होगा। अतः अर्वाचीन पद सम्बद्ध व्यक्ति से काफी बाद और अपने से थोड़ा पीछे होने में ही प्रयुक्त हुआ है। यहाँ भाष्यकार से दिङ्नाग दो तीन सौ वर्ष बाद में और वाचस्पति मिश्र, दिङ्नाग से 16-17 सौ वर्ष बाद ऐसी स्थिति में अर्वाचीन पद सर्वथा असंगत होगा!

उत्तरपक्ष

अक्षपाद गौतम के 'न्याय सूत्र' के भाष्यकार वात्स्यायन जो कि 'कामसूत्र' प्रणेता वात्स्यायन से भिन्न थे ईसवी सन् पूर्व की चतुर्थ सदी में हुए थे। [70]श्रीमद्भागवत महापुराण से ज्ञात होता है कि इन वात्स्यायन का नाम कौटिल्य व चाणक्य भी था तथा इन्होंने नन्द और इसके सुमाल्य आदि पुत्रों का नाश कर चन्द्रगुप्त को राजा बनाया था।

इस प्रकार वात्स्यायन तथा दिङ्नाग के मध्य लगभग 800 वर्ष और दिङ्नाग एवं वाचस्पति मिश्र के मध्य लगभग 300 वर्ष का अन्तराल प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति में न्याय भाष्यकार वात्स्यायन से काफी बाद में तथा न्याय तात्पर्य टीकाकार वाचस्पति मिश्र से कुछ पहले होने के कारण उपर्युक्त पंक्ति में 'अर्वाचीन' शब्द का प्रयोग सर्वथा उचित है। पूर्वपक्षी द्वारा प्रस्तुत तर्क अयुक्तियुक्त व असंगत है।

बिन्दु-*18*

पङ्क्तिसाम्य के आधार पर काल निर्धारण एक अवैज्ञानिक व अविश्वसनीय पद्धति

० पूर्वपक्ष

यह अत्यन्त सुप्रसिद्ध है कि भर्तृहरि विक्रमादित्य के बड़े भाई थे। वे महान् वैयाकरण थे। स्फोटवाद के प्रवर्तक नहीं तो भी स्फुट वर्णन करने वाले भर्तृहरि ही प्रसिद्ध हैं। अतएव स्फोटवाद का खण्डन या मण्डन जो भी करना हो उसके लिये

भर्तृहरि का ही उदाहरण प्रायः सभी आचार्य देते हैं, चाहे वे वैदिक हों चाहे बौद्ध। स्फोटवाद का खण्डन आचार्य ने शारीरकभाष्य में किया है। यद्यपि वहाँ भर्तृहरि का नाम नहीं लिया गया है फिर भी भर्तृहरि प्रतिपादित सिद्धान्त पर सम्यक् विचार किया है। इतना ही नहीं, आचार्य के समकालिक रूप से प्रसिद्ध कुमारिलभट्ट व मण्डन मिश्र ने वाक्यपदीय के श्लोकों का उद्धरण दिया है–

'तत्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणादृते' ।। 1/13 ।।

इस वाक्यपदीय श्लोक का उद्धरण देकर कुमारिल ने व्यंग्य किया है कि

'अतएव श्लोकोत्तरार्ध वक्तव्यम्
तत्वावबोधः शब्दानां नास्ति श्रोत्रेन्द्रियादृते।'

अन्य भी कई उद्धरण कहीं पूर्वपक्ष में व कहीं संवाद पक्ष में दिया गया है। आचार्य के समकालीन मण्डन मिश्र ने ब्रह्मसिद्धि में–

'सत्यमाकृतिसंहारे यदन्ते व्यवतिष्ठते'

इस प्रकार अपने समर्थन में हरिकारिका का उद्धरण दिया है। भर्तृहरि को हरि भी कहते हैं। विक्रम संवत् प्रवर्तक विक्रमादित्य का बड़ा भाई होने के कारण भर्तृहरि को ईसवी सन् पूर्व की प्रथम शताब्दी के पूर्व ले जाने को कोई तैयार नहीं है। इससे आचार्य शङ्कर को ईसवी सन् पञ्चम या षष्ठ शताब्दी में ले जाने वाले पक्षधरों की बात पूरी तरह से कट जाती है?

उत्तरपक्ष

[71]सर्वप्रथम तो आपको हम यह बता दें कि स्फोटवाद के प्रवर्तक स्फोटायन नामक वैय्याकरण थे। उनका स्थितिकाल 2800 विक्रम संवत् पूर्व था। पाणिनि ने अष्टाध्यायी 6/1/123 में इनका उल्लेख किया है यथा–'अवङ् स्फोटायनस्य'। ये स्फोटन के वंशज थे। स्फोटन भी एक वैय्याकरण थे, इनका उल्लेख अथर्व प्रातिशाख्य 1/103 व 2/38 में है।

अब हम आपको यह बताना चाहेंगे कि वाक्यपदीयकार भर्तृहरि, शतकत्रय के रचयिता भर्तृहरि तथा चीनी यात्री इत्सिंग द्वारा उल्लिखित भर्तृहरि तीनों ही तीन भिन्न-भिन्न कालों में होने वाले तीन भिन्न व्यक्ति हैं।

[72]चीनी यात्री इत्सिंग के विवरण के अनुसार उसके द्वारा उल्लिखित भर्तृहरि

बौद्धमतावलम्बी राजा थे। वे सात बार बौद्ध भिक्षु हुए और प्रत्येक बार भिक्षुत्व त्याग कर सात बार गृहस्थ बने। इत्सिंग ने लिखा है कि 675 ई० सन् में उसके भारत पहुँचने के 40 वर्ष पूर्व अर्थात् 635 ई० सन् में इस राजा भर्तृहरि की मृत्यु हो चुकी थी। यह भर्तृहरि, शतक-त्रय के रचयिता भर्तृहरि से सर्वथा भिन्न थे क्योंकि शतकत्रय रचयिता शैव थे जैसा कि वैराग्य शतक के एक श्लोक से स्पष्ट है—

[73]वयं पुण्यारण्ये परिणतशरच्चन्द्रकिरणां।
त्रियामां नेष्यामो हरचरणचित्तैक शरणाः ।।

वाक्यपदीयकार, शतक-त्रय प्रणेता भर्तृहरि से भी भिन्न थे। जनश्रुति के अनुसार शतक-त्रय प्रणेता के गुरु का नाम गोरक्षनाथ था जबकि [74]वाक्यपदीयकार भर्तृहरि के गुरु का नाम वसुरात था। ये कट्टर वैदिक थे। इन्होंने अपने ग्रन्थ के आरम्भ में पतञ्जलि की वन्दना की है। [75]'शब्दों के अर्थ का ज्ञान प्राप्त होने पर शब्द ब्रह्म की प्राप्ति होती है' इस सिद्धान्त के प्रवर्तक वाक्यपदीयकार भर्तृहरि नहीं बल्कि व्याडि नामक प्राचीन वैय्याकरण थे। व्याडि ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अपने 'संग्रह' नामक ग्रन्थ में किया था। महाराज समुद्रगुप्त (ई० सन् की चतुर्थ सदी) ने लिखा है–

[76]'रसाचार्यः कविर्व्याडिशब्दब्रह्मैकवाङ्मुनिः।
दाक्षीपुत्रवचो व्याख्यापटुर्मीमांसाग्रणिः ।।

[77]पतञ्जलि के व्याकरण महाभाष्य के अनुसार व्याडि का 'संग्रह' व्याकरण का एक श्रेष्ठ दार्शनिक ग्रन्थ था जिसकी रचना पद्धति पाणिनीय अष्टाध्यायी के समान सूत्रात्मक थी (महा./4/2/60)। इस ग्रन्थ में चौदह सहस्र शब्दरूपों की जानकारी दी गयी थी (महा./1/1/1)

[78]चान्द्र व्याकरण की प्राप्त परम्परा के अनुसार 'संग्रह' ग्रन्थ में कुल 5 अध्याय एवं एक लक्ष श्लोक थे। [79]व्याडि का यह अप्राप्य ग्रन्थ यत्र-तत्र उद्धृत है। इस ग्रन्थ के 21 सूत्र निश्चितरूप में ज्ञात हुए हैं। अनन्तरकालीन वैय्याकरणों द्वारा इस ग्रन्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। [80]पाणिनि के अष्टाध्यायी 6/2/86 में व्याडि का उल्लेख है। यास्क, शौनक, पाणिनी, पिंगल, व्याडि एवं कौत्स–ये व्याकराणाचार्य प्रायः समकालीन थे। पं० युधिष्ठिर शर्मा मीमांसक के अनुसार व्याडि का काल ई० पू० 2800 है!

[81]वाक्यपदीय में भर्तृहरि ने स्वयं लिखा है कि लोगों की रुचि संक्षेप में पढ़ने की तथा अल्पविद्यापरिग्रही हो गई। ऐसे अल्पविद्यापरिग्रही पाठकों को पाकर 'संग्रह' ग्रन्थ का पठन बन्द हो गया। तब इसके बीज को ग्रहण कर पतञ्जलि ने महाभाष्य की रचना की। किन्तु अत्यन्त गम्भीर होने के कारण धीरे-धीरे महाभाष्य का भी पठन-पाठन बन्द हो गया। महाभाष्य, संग्रह का प्रतिकंचुक स्वरूप था। बाद में कश्मीर नरेश अभिमन्यु के शासनकाल में चन्द्राचार्य ने महाभाष्य का उद्धार कर इसका पुनः प्रचार किया। लुप्त 'संग्रह' ग्रन्थ के प्रतिपादित सिद्धान्त एवं उपलब्ध सामग्रियों का संकलन कर भर्तृहरि ने वाक्यपदीय ग्रन्थ रचा।

भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में चन्द्राचार्य व कश्मीर नरेश अभिमन्यु का उल्लेख किया है। [82]कल्हण की राजतरंगिणी के अनुसार गौतम बुद्ध की मृत्यु के 150 वर्ष पश्चात् राजा अभिमन्यु अभिषिक्त हुए थे अर्थात् ई० पू० 337 के पश्चात्। इसी राजा के शासनकाल में चन्द्राचार्य ने महाभाष्य का उद्धार किया जिससे प्रेरित होकर 'संग्रह' ग्रन्थ के उद्धार हेतु भर्तृहरि ने वाक्यपदीय की रचना की। इस आधार पर इन भर्तृहरि का काल ई० पू० तीसरी शताब्दी निश्चित होता है। पं० युधिष्ठिर शर्मा मीमांसक द्वारा इनका काल वि०सं०पू० 500 निश्चित किया गया है।

अतएव यह निश्चित है कि कुमारिल भट्ट, मण्डन मिश्र तथा वाक्यपदीयकार द्वारा उद्धृत उक्त वाक्य उनके अपने न होकर व्याडि के 'संग्रह' ग्रन्थ से लिए गए उद्धरणमात्र हैं जो कि इन तीनों से ही बहुत पूर्व हुए थे।

मात्र पंक्तिसाम्य के अनुसार एक ग्रन्थकार के सापेक्ष दूसरे ग्रन्थकार के काल निर्धारण करने की प्रविधि विशेषकर संस्कृति साहित्य के साहित्यकारों के परिप्रेक्ष्य में पूर्णतया अवैज्ञानिक और अविश्वसनीय है। श्रीमज्जगद्‌गुरुशाङ्करमठविमर्श के लेखक का मानना है कि—[83]'पुराकाल के विद्वान् अपने-अपने गुरु या प्रकाण्ड विद्वानों अथवा भूतपूर्व आचार्यों के सिद्धान्तों, विचारों व वादों पर अपनी व्याख्या या टीका-टिप्पणी अथवा उसका संग्रहरूप लिखकर कहते थे कि यह सब उनका ही कथन है। वे अपने पूर्व के विद्वानों या आचार्यों के भावों अथवा विचारों को नकल कर अथवा उसके साथ अपने भी विचार मिलाकर या उन विचारों को बदल कर अपने ग्रन्थ में दे देते थे।'

उपर्युक्त मत की पुष्टि निम्न प्रमाणों से होती है-

1. भासकृत नाटक प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् में एक श्लोक है-

[84]नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में किसी पूर्वाचार्य का दो श्लोक उद्धृत किया है-

[85]ज्ञानेन यज्ञैस्तपसा च विप्राः स्वर्गैशिणः पात्रचयैश्च यान्ति।
क्षणेन तामप्यतियान्ति शूराः प्राणान्सुयुद्धेषु परित्यजन्तः॥ 1 ॥
नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥ 2 ॥

ऐसी स्थित में हम यह कह सकते हैं कि भास ने कौटिल्य के अर्थशास्त्र से यह श्लोक लिया है क्योंकि प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् में अर्थशास्त्र का भी उल्लेख है। यथा-

[86]अर्थशास्त्र गुणग्राही ज्येष्ठो गोपालकः सुतः'

उपर्युक्त वाक्य उज्जैन नरेश चण्डप्रद्योत ने अपने पुत्र के सम्बन्ध में कहा है। चण्ड प्रद्योत मगधनरेश बिम्बिसार के समकालीन थे तथा इनका राज्याभिषेक ई०पू० 521 में हुआ था। अब समस्या उठ खड़ी होती है चाणक्य के काल की। तो क्या चाणक्य ई०पू० छठी सदी के पूर्व हुये थे? इसका समाधान भास की एक अन्य कृति प्रतिमानाटकम् से हो जाता है वहाँ पर उन्होंने स्पष्टतः बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र का उल्लेख किया है न कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र का यथा-

[87]भोः कश्यपगोत्रोऽस्मि, साङ्गवेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यम् अर्थ शास्त्रम्, प्राचेतसं श्राद्धकल्पञ्च।'

इससे यह प्रकाशित होता है कि प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् में उल्लिखित अर्थशास्त्र, [88]बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र है जिसका उल्लेख कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र में किया है। इस दशा में भास कौटिल्य के पूर्ववर्ती सिद्ध हो जाते हैं। तो क्या कौटिल्य ने भास की कृति प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् से उक्त श्लोक को उद्धृत किया है? इसका भी उत्तर है, नहीं। क्योंकि कौटिल्य ने किसी प्राचीन पूर्वाचार्य के दो श्लोकों को उद्धृत किया है। चाणक्य द्वारा उद्धृत पहला श्लोक प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् में नहीं है। इससे यही स्पष्ट होता है कि भास तथा कौटिल्य दोनों ने किसी पूर्वाचार्य के ग्रन्थ से उक्त श्लोक को उद्धृत किया है जो कि सम्प्रति अविज्ञात है।

2. [89]श्रीमद्‌भागवत महापुराण में कहा गया है कि–विराट् पुरुष के मुख से ब्राह्मणों, भुजाओं से क्षत्रियों, जंघाओं से वैश्यों तथा चरणों से शूद्रों की उत्पत्ति हुई। इसी आशय के श्लोक [90]स्कन्दपुराण, [91]सुबालोपनिषद्, [92]महाभारत, [93]लघुहारीतस्मृति, [94]याज्ञवल्क्य स्मृति, तथा [95]मनुस्मृति में भी हैं। परन्तु श्लोकों के पाठभेद से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक ग्रन्थकार ने दूसरे ग्रन्थ से उद्धरण नहीं दिया है बल्कि उन सभी के स्रोत [96]ऋग्वेद, [97]यजुर्वेद तथा [98]अथर्ववेद हैं जहाँ पर वर्णोत्पत्ति का मूल सिद्धान्त वर्णित है। मात्र शब्द साम्य अथवा अर्थसाम्य रखने वाले श्लोकों के दो या दो से अधिक ग्रन्थकारों के ग्रन्थों में पाये जाने से एक को दूसरे का पूर्ववर्ती या अनुवर्ती नहीं प्रमाणित किया जा सकता है इसके लिए तो अन्य ही आधार ढूँढ़ने पड़ेंगे।

[99]श्रीमद्वाल्मिकि रामायण तथा [100]श्रीविष्णुपुराण में क्षत्रियों की उत्पत्ति 'भुजाओं' से न मानकर 'हृदय' से मानी गयी है। सम्भवतः इन ग्रन्थकारों के समक्ष वेदों की एक ऐसी शाखा की संहितायें उपलब्ध थीं जिनमें क्षत्रियों की उत्पत्ति हृदय से बतायी गई थी।

3. आत्मा, अजर, अमर और अविनाशी है इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले दो श्लोक–'य एनं वेत्ति हन्तारं....,' व 'न जायते म्रियते वा कदाचित्....' [101]श्रीमद्भगवद्‌गीता तथा [102]कठोपनिषद् दोनों में ही अल्पपाठ भेद के साथ पाये जाते हैं। पूर्वपक्षी की भाषा में यदि हम कहें तो हमें यह कहना पड़ेगा कि–यह कहना कि कठोपनिषद् से श्रीमद्भगवद्‌गीता के रचयिता ने उक्त श्लोकों को लिया एक सुप्रतिष्ठित ईश्वरकोटि के व्यक्ति पर चोरी का आरोप लगाना है। तब क्या ऐसी स्थिति में हम यह मान लें कि कठोपनिषद् जो कि श्रुति है श्रीमद्भगवद्‌गीता का परवर्ती ग्रन्थ है?

4. 'अणोरणीयान्महतो....' श्लोक अत्यल्प पाठ भेद के साथ [103]कठोपनिषद् तथा [104]श्वेताश्वतरोपनिषद् दोनों ही में पाया जाता है। ऐसी स्थिति में कौन-सा उपनिषद् पूर्ववर्ती और कौन-सा अनुवर्ती इसका निर्धारण पूर्वपक्षी कैसे करेंगे? क्या एक श्रुति ने दूसरे श्रुति से चोरी की है?

5. [105]मारकण्डेय पुराण 42/7-8 में 'प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्य मुच्यते' कहा गया है। लिङ्ग पुराण 2/92/49-50 में 'प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म लक्षणमुच्यते' आया है। श्रीमद्‌भागवत महापुराण में 'धनुर्हि तस्य प्रणवं पठन्ति शरं

तु जीवं परमेव लक्ष्यम्' अभिकथित है। ऐसी स्थिति में क्या यह कहना उचित होगा कि क्रमशः एक पुराणकार ने दूसरे पुराण से उपर्युक्त पंक्ति को ग्रहण किया है? उत्तर होगा, नहीं क्योंकि मुण्डकोपनिषद् का श्लोक–

[106]प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥

उपर्युक्त तीनों ही पुराणों का मूल स्रोत निश्चित होता है। अतएव पंक्ति साम्य के आधार पर उक्त तीन पुराणों के काल निर्धारण का प्रयास, मात्र विभ्रमकारी होगा।

6. 'त्यजेदेकं कुलस्यार्थे....' श्लोक [107]पंचतंत्रम्, [108]चाणक्यनीति तथा [109]महाभारत में अत्यल्प पाठभेद के साथ पाया जाता है। तो पूर्वपक्षी के शब्दों में क्या हम यह कह दें कि चाणक्य जैसे सुप्रतिष्ठित विद्वान् तो चोरी कर नहीं सकते अतः निश्चित रूप से महाभारत चाणक्य के बाद लिखा गया ग्रन्थ है?

7. चक्रवत् सुख-दुःख के परिवर्तन से सम्बन्धित पंक्ति [110]मेघदूतम्, [111]स्वप्नवासवदत्तम्, [112]महाभारत तथा [113]अध्यात्मरामायण में प्राप्त है। तो क्या इस उपलब्धि के आधार पर पूर्वपक्षी के शब्दों में हम यह कह दें कि कालिदास जैसे सुप्रतिष्ठित कवि तो चोरी कर नहीं सकते अतएव स्वप्नवासवदत्तम् एवं महाभारत, मेघदूतम् के पश्चात् लिखे गये?

8. 'प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः....' भर्तृहरि कृत [114]नीतिशतकम्, [115]विशाखदत्त कृत मुद्राराक्षसम् तथा [116]विष्णुशर्मा कृत पंचतंत्रम् में यथावत् प्राप्त होता है।

9. 'न विश्वसेदविश्वस्ते....' श्लोक [117]पंचतंत्रम्, [118]चाणक्य नीतिदर्पण तथा [119]महाभारत में पाया जाता है।

10. 'पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत्....' यह श्लोक अल्पपाठ भेद के साथ [120]पराशर स्मृति, [121]अत्रि संहिता, [122]चाणक्य नीतिदर्पण एवं [123]बृहद् विष्णुस्मृति में उपलब्ध है।

11. 'अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभिता....' यह श्लोक कुछ पाठ भेद के साथ [124]पंचतंत्रम्, [125]चाणक्य नीतिदर्पण तथा [126]वाल्मीकिरामायण में प्राप्त है।

12. 'यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवं परिषेवते....' यह श्लोक लगभग इसी रूप में [127]चाणक्य नीतिदर्पण, [128]पंचतंत्रम् और [129]गरुड़पुराण में उपलब्ध है।

13. 'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः....' यह श्लोक [130]मनुस्मृति तथा [131]महाभारत में प्राप्त है। अर्थतः यह श्लोक [132]शुक्रनीति में भी है।

14. 'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति....' यह श्लोक ज्यों का त्यों [133]मनुस्मृति, [134]महाभारत में पाया जाता है।

15. 'यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः' यह पंक्ति भासकृत [135]अविमारकम्, [136]पंचतंत्रम् तथा कृष्णमित्र कृत [137]प्रबोध चन्द्रोदय में पायी जाती है।

16. शुक्रनीति की एक पंक्ति–[138]'न कुर्य्यात सहसा कार्य्यं...', अल्प रूपान्तर के साथ भारवि कृत [139]किरातार्जुनीयम् में भी पायी जाती है। 'लालनाद् बहवो दोषास्ताडनाद् बहवो गुणाः' यह पंक्ति [140]पतञ्जलि तथा [141]चाणक्य के ग्रन्थों में यथावत् पायी जाती है। 'कालः पचति भूतानि' यह पंक्ति [142]महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास तथा [143]चाणक्य द्वारा समानरूप से अभिकथित है। 'भवन्ति नम्रास्तरवः...' यह श्लोक भर्तृहरि के [144]नीतिशतकम् तथा महाकवि कालिदास कृत [145]अभिज्ञानशाकुन्तलम् में यथारूप वर्णित है। 'दानं भोगो नाशस्तिस्रो...' तथा 'परिवर्तिनि संसारे मृतः...' श्लोक [146]पंचतंत्रम् तथा [147]भर्तृहरि कृत नीतिशतकम् में पाये जाते हैं। 'मरणान्तानि वैराणि' यह पंक्ति [148]वाल्मीकीयरामायण तथा [149]अध्यात्म रामायण दोनों ही ग्रन्थों में समान रूप से प्राप्त है। 'तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते...' यह श्लोक [150]मनुस्मृति, [151]पराशर स्मृति, [152]पद्म पुराण, [153]लिङ्गपुराण, [154]भविष्य पुराण आदि में प्राप्त है।

ऐसी स्थिति में एक बार पुनः यही कहना पड़ेगा कि पंक्तिसाम्य के आधार पर एक ग्रन्थकार के सापेक्ष दूसरे ग्रन्थकार का काल निर्धारण कम से कम संस्कृत साहित्य के सम्बन्ध में करना तो अँधेरे में तीर छोड़ने के समान होगा।

बिन्दु-*19*

पतञ्जलि का काल

० पूर्वपक्ष

योग दर्शन प्रणेता पतञ्जलि तथा महाभाष्य प्रणेता पतञ्जलि दोनों दो भिन्न-भिन्न कालों में होने वाले दो विभिन्न व्यक्ति हैं। योगदर्शन प्रणेता गौतम बुद्ध के पूर्ववर्ती तथा महाभाष्यकार अनुवर्ती प्रमाणित होते हैं क्योंकि महाभाष्य में पुष्यमित्र एवं मौर्यों का उल्लेख है।

उत्तरपक्ष

योग दर्शन प्रणेता पतञ्जलि ही महाभाष्य के भी रचनाकार हैं, वाक्यपदीयकार स्वयं इस बात के साक्षी हैं, वे लिखते हैं–

[155]योगेन चित्तेन पदेन वाचां, मलं शरीरस्य च वैद्यकेन ।
योऽपाकरोत् तं प्रवरं मुनीनां, पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ।।

कुछ लोग महाभाष्य की पंक्तियों–[156]'मौर्य हिरण्यार्थिभिरर्चाः प्रकल्पिताः। भवेत्तासु न स्यात्। यास्त्वेताः सम्प्रति पूजार्थास्तासु भविष्यति।' के आधार पर महाभाष्यकार का काल मौर्य राजवंश का पतन काल मानते हैं क्योंकि उनका मानना है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के पूर्व मौर्य जाति का अस्तित्व न था तथा उक्त पंक्ति से मौर्यों की दारिद्र्यपूर्ण स्थिति का पता चलता है। परन्तु उपर्युक्त तर्क उचित नहीं है क्योंकि मौर्यों का अस्तित्व तो गौतम बुद्ध के भी समय में था। [157]महापरिनिब्बाणसुत्त तथा [158]बुद्धचरितम् में लिखा है कि बुद्ध की अंत्येष्टि के पश्चात् पिप्पलीवन के मौर्य उनकी चिता के अंगारों को ले गये। [159]राहुल सांकृत्यायन के अनुसार बिहार प्रान्त के चम्पारण जनपद में नरकटियागंज रेलवे स्टेशन के पास रमपुरवा के नजदीक जो पिपरिया नामक स्थान है वही गौतम बुद्ध के समय पिप्पलीवन के नाम से प्रसिद्ध था। [160]चीनी यात्री फाहियान ने भी मौर्यों के द्वारा निर्मित अङ्गार स्तूप का उल्लेख किया है।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मौर्यों का अस्तित्व गौतम बुद्ध के समय में भी था। वे वृषल न होकर क्षत्रिय जाति के थे तथा पिप्पलीवन उनकी राजधानी थी। अतः यह भ्रान्त धारणा है कि चन्द्रगुप्त के पूर्व मौर्यों का अस्तित्व नहीं था तथा मौर्यों का उल्लेख करने वाले पतञ्जलि चन्द्रगुप्त मौर्य के पूर्व के नहीं हो सकते।

महाभाष्यकार की एक अन्य पंक्ति–[161]पुष्यमित्रो यजते, याजकाः यजन्ति। तत्र भवितव्यम्–पुष्यमित्रो याजयेत, याजकाः याजन्तीति याज्यादिषु चाविपर्यासो वक्तव्यः' के आधार पर कुछ विद्वान् पतञ्जलि को शुङ्गवंशी राजा पुष्यमित्र का समकालीन मानते हैं। परन्तु यह भी उचित नहीं है क्योंकि उक्त पंक्ति से यह नहीं विनिश्चित किया जा सकता है कि यहाँ राजा पुष्यमित्र शुङ्ग का उल्लेख है। पूर्व प्रश्न के उत्तर में सिद्ध किया जा चुका है कि मात्र अनिश्चयात्मक पंक्तियों के आधार पर किसी का काल निर्धारण करना सर्वथा अवैज्ञानिक प्रयास है। वैसे शुङ्गों का उल्लेख तो पाणिनि ने भी किया है यथा–

[162]विकर्णशुङ्गच्छगलाद्वत्सभरद्वाजात्रिषु

यही नहीं आश्वलायन श्रौतसूत्र में भी शुङ्ग आचार्य का उल्लेख है। तो क्या मात्र शुङ्ग शब्द के उल्लेख करने के कारण हम आश्वलायन तथा पाणिनि को पुष्यमित्र शुङ्ग का समकालीन अथवा पश्चात्वर्ती मान लें?

कल्हण कृत राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि महाभाष्य का एक बार [163]राजा अभिमन्यु के समय में बुद्ध के निर्वाण के 150 वर्ष बाद तथा दूसरी बार [164]राजा जयापीड के समय में 751 से 782 ई० के बीच उद्धार किया गया। [165]इसकी पुष्टि वाक्यपदीयकार भर्तृहरि भी करते हैं कि राजा अभिमन्यु के समय में महाभाष्य का पुनरुद्धार किया गया। स्वयं भर्तृहरि ने महाभाष्यदीपिका लिखकर इसके प्रचार-प्रसार को बढ़ाने का काम किया। [166]डी. सी. सरकार के मतानुसार महाभाष्य में कुषाण काल तक परिवर्तन-परिवर्द्धन होते रहे। ऐसी स्थिति में परिवर्तन-परिवर्द्धन के फलस्वरूप यदि महाभाष्य में कुछ ऐसी पंक्तियाँ आ भी गयी हों जो कि पश्चात्वर्ती सिद्ध होती हैं तो उन पंक्तियों को प्रक्षिप्त ही मानना उचित होगा क्योंकि जिस महाभाष्य का प्रथम बार उद्धार ई०पू० 337 के लगभग किया गया था उसके प्रणेता पतञ्जलि ईसवी सन् पूर्व की द्वितीय सदी के कैसे हो सकते हैं?

बिन्दु-20

पुराणों में मात्र प्रधान राजाओं का वर्णन

० पूर्वपक्ष

पुराणों की अवहेलना भारतीयों के लिये एक भयंकर भूल है जिसके शिकार हमारे आर्य भाई हमेशा से रहे हैं। भले ही पुराणों में अर्थवाद के रूप में लाखों वर्षों की तपस्या आदि का वर्णन किया गया है या 'अहोरात्रं वै संवत्सरः' आदि के अनुसार कहीं वर्णन किया गया हो परन्तु जहाँ प्रसिद्ध इतिहास बताना है वहाँ पुराणकार ठीक-ठीक बताते हैं।

उत्तरपक्ष

निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि श्रुति वाक्य[167]'परोक्ष कामा हि देवाः' का अनुसरण करते हुये विद्या को गुह्य रखने के प्रयोजन से प्राचीन ग्रन्थों में

वर्ष का प्रयोग दिन, पक्ष, मास, ऋतु, मुहूर्त आदि के लिये किया गया है जो कि [168]शतपथ ब्राह्मण से स्पष्ट है।

जहाँ तक पुराणों की वंश परम्परा का सम्बन्ध है पुराण तो ठीक-ठीक बताते हैं परन्तु हम ठीक-ठीक समझते नहीं। इस संदर्भ में महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी का मत संगत एवं ग्राह्य है। उनके अनुसार–[169]पुराणों की वंश परम्परा में क्रमबद्ध सभी राजाओं के नाम नहीं दिये गये हैं अपितु संबन्धित वंश के केवल प्रधान राजाओं के ही नाम दिये गये हैं। अनेक वर्णन प्रसंगों में पुत्र का अर्थवंशज है यथा राम के लिये रघुनंदन का प्रयोग। इसकी पुष्टि 'अपत्यं पितुरेव स्यात्ततः प्राचामपीति च' अर्थात् 'पिता का तो अपत्य होता ही है, उनके पुरुषों का भी वह अपत्य कहा जाता है'–इस वाक्य से भी होती है।

श्रीमद्भागवतमहापुराण में परीक्षित के द्वारा राजाओं के वंश पूछने पर शुकदेव जी ने कहा–

श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परन्तप।
न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्षशतैरपि।

(श्रीमद्भागवत् 9/1/7)

अर्थात् 'वैवस्त मनु का मैं प्रधान रूप से वंश सुनाता हूँ। इसका विस्तार तो सैकड़ों वर्षों में भी नहीं किया जा सकता।'

इसी प्रकार 'लिङ्गपुराण' तथा 'वायुपुराण' (उत्त., अ. 26 श्लोक 212) में भी राजाओं के वंश कीर्त्तन के अन्त में लिखा गया है–

एते इक्ष्वाकुदायादा राजानः प्रायशः स्मृताः।
वंशे प्रधाना एतस्मिन् प्राधान्येन प्रकीर्त्तिताः॥

अर्थात्–'इक्ष्वाकु वंश के प्रायः प्रधान-प्रधान राजाओं के ही नाम दिये गये हैं।' उदाहरणार्थ–इक्ष्वाकु पुत्र विकुक्षि के वंश में प्रायः 55 पुरुषों के अनन्तर राम का उल्लेख पुराणों में मिलता है जबकि इक्ष्वाकु के ही एक अन्य पुत्र निमि के वंश में प्रायः 21 पीढ़ी के अनन्तर ही सीता के पिता सीरध्वज का नाम आता है। इससे स्पष्ट है कि पुराणों में दोनों वंशों के प्रधान-प्रधान राजाओं के ही नाम गिनाये गये हैं। अतः, जिस वंश में प्रधान और प्रतापी राजा अधिक हुए उसमें अधिक तथा जिसमें कम हुए उसमें कम नाम आ गये। ऐसा भी देखा जाता है कि किसी एक पुराण में एक

वंश के राजाओं के जो नाम मिलते हैं वे दूसरे पुराणों में नहीं मिलते। इसका कारण है कि जिस पुराणकार की दृष्टि में जो राजा प्रतापवान् समझा गया उसी का उल्लेख उस पुराणकार ने किया। पुराणों में वंशों के वक्ता पृथक्-पृथक् ऋषि आदि हैं जो स्वतः पुराणों से स्पष्ट है। अतः पुराणों में काल-गणना का जो विस्तार वैज्ञानिक रीति से किया गया है, उसे न मानकर अपनी प्रज्ञा से उसका संकोच करना उचित नहीं है।

बिन्दु-21

पूर्वपक्षी के पौराणिक आधार की विसंगतियाँ

० पूर्वपक्ष

हमें तरस तो तब आती है जब लोग स्वयं मूल ग्रन्थों का अध्ययन न कर दूसरों के उद्धृत वचनों पर निर्भर रहते हुए उन्हीं को गाली देने लगते हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार बृहद्रथ वंश के (21) राजाओं ने 1000 वर्ष, प्रद्योत वंश के 5 राजाओं ने 138 वर्ष, शिशुनाग वंश के 10 राजाओं ने 360 वर्ष, नंद वंश के 9 राजाओं ने 110 वर्ष, मौर्य वंश के 10 राजाओं ने 137 वर्ष, शुंग वंश के 10 राजाओं ने 100 वर्ष, कण्ववंश के 4 राजाओं ने 345 वर्ष तथा आंध्र जातीय 30 राजाओं ने 456 वर्ष कलि संवत् 2666 (तुल्य ईसवी सन् पूर्व 436) तक राज्य किया। उसके बाद 7 आभीर, 10 गर्दभी, 16 कंक, 8 यवन और 14 तुरुष्क कुल 55 राजाओं ने 1099 वर्ष, 20 वर्ष के औसत से राज्य किया। कल्हण के अनुसार हुष्क, जुष्क के बाद कनिष्क आता है। अर्थात् कनिष्क 44वाँ राजा है। फलतः (आन्ध्रवंश की समाप्ति के) 860 वर्ष पश्चात् कनिष्क कलिसंवत् 3526 (तुल्य ई० सन् 426) में राजा हुआ। परन्तु सबने 20-20 वर्ष ही राज्य किया हो ऐसा नहीं हो सकता। अतः सौ दो सौ वर्ष का अन्तर भी आ सकता है। सर्वथापि कनिष्क का काल ईसा की दूसरी या तीसरी सदी आता है। जो बहुत से गवेषकों को इष्ट है। फिर जो कुछ कमी बेसी करना है वह इसी 1099 वर्ष में ही करना पड़ेगा। माना जाय कि आभीर, गर्दभी, कंक तथा यवन राजवंशों के शासक परस्पर भाई थे (अर्थात् मात्र 4 पीढ़ी के शासक थे) तथा 14 तुरुष्क 14 पीढ़ी के राजा थे। तब इन (18 पीढ़ी के) राजाओं का औसत

(1099 ÷ 18 =) 61 वर्ष प्राप्त होता है। इस आधार पर कनिष्क (आन्ध्र वंश की समाप्ति के) 366 वर्ष पश्चात् (क्योंकि आभीर, गर्दभी, कंक एवं यवन वंशों की चार पीढ़ी के राजाओं के बाद कनिष्क, तुरूष्क वंश में हुष्क, जुष्क के बाद तीसरे क्रम पर आता है अतः आन्ध्रवंश की समाप्ति के बाद वह 6 पीढ़ी के राजाओं के बाद आता है) अर्थात् कलि संवत् 3032 (तुल्य ईसवी सन् पूर्व 70) में राजा हुआ। ऐसी स्थिति में कल्हण का यह कहना कि कनिष्क से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व बुद्ध का निर्वाण हुआ यह हिसाब-किताब या किंवदंती की गड़बड़ी ही लगती है। उन्हें कम से कम तीन साढ़े तीन सौ वर्ष कहना चाहिए था।

उत्तरपक्ष

सर्वप्रथम तो पूर्वपक्षी को अपने ऊपर तरस आनी चाहिये क्योंकि उन्होंने मूल ग्रन्थों का स्वयं अध्ययन न कर दूसरों के उद्धरणों के आधार पर ही अपने लेख को मूर्त रूप दिया है, यथा—

1. कल्हण की राजतरंगिणी के विवरणों के अनुसार कश्मीर का राजा गोनन्द (द्वितीय) परीक्षित का समवयस्क ठहरता है। गोनन्द (द्वितीय) से गणना करने पर कनिष्क 50वें क्रम पर आता है। यदि पूर्वपक्षी ने मूल ग्रन्थ का अवलोकन किया होता तो वे कनिष्क को क्यों 44वाँ राजा लिखते?

2. पूर्वपक्षी के विवरणानुसार महाभारत युद्ध के पश्चात् से मगध पर ई०पू० 436 तक कुल 99 राजाओं ने राज्य किया। उसके बाद 55 राजाओं ने राज्य किया जिसमें उनके अनुसार कनिष्क 44वाँ अथवा एक अन्य गणना के अनुसार 7वाँ राजा निश्चित किया गया है। इस आधार पर यह कनिष्क महाभारत के युद्ध के पश्चात् से मगध का कथित 143वाँ अथवा 106वाँ राजा सिद्ध होता है. ऐसी स्थिति में महाभारत युद्ध के पश्चात् से कश्मीर पर राज्य करने वाले 50वें राजा कनिष्क से तथाकथित मगध पर शासन करने वाले उक्त 143वें अथवा 106वें राजा कनिष्क का सम्बन्ध कैसे स्थापित किया जा सकता है?

3. राजतरंगिणी के अनुसार कनिष्क का राज्यांत गौतम बुद्ध के निर्वाण के 150 वर्ष पश्चात् अर्थात् ई०पू० 337 में हुआ था। श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार महाभारत युद्ध के पश्चात्वर्ती मगध नरेशों की सूची में नंद वंश का अंतिम राजा

45वें क्रम पर आता है। नंद वंश के अन्तिम राजा का नाम धनानंद था जो कि भारत पर सिकन्दर द्वारा किये गये आक्रमण के समय ई० पू० 326 में मगध पर राज्य कर रहा था। अतएव कश्मीर राजवंश के 50वें क्रम पर आनेवाले राजा कनिष्क का मगध के 45वें राजा धनानन्द का समकालीन होना युक्तिसंगत है। अतः कहल्ण का यह कथन पूर्णतया सत्य है कि गौतम बुद्ध के निर्वाण के 150 वर्ष के पश्चात् अर्थात् ई० पू० 337 में कश्मीर नरेश कनिष्क का राज्यांत हुआ।

4. हमें बड़े संकोच के साथ कहना पड़ रहा है कि पूर्वपक्षी ने श्रीमद्भागवत महापुराण का भी मूल ग्रन्थ नहीं पढ़ा था अन्यथा [170]शुङ्गवंशी राजाओं का राजत्व काल वे 112 वर्ष के स्थान पर 100 वर्ष क्यों लिखते? इतना ही नहीं उन्होंने श्रीमद्भागवत महापुराण के अशुद्ध पाठ के आधार पर 4 कण्ववंशी राजाओं का राजत्व काल 345 वर्ष लिख दिया जो कि प्रथम दृष्ट्या ही असंभव प्रतीत होता है। पूर्वपक्षी ने यदि मूल [171]विष्णु पुराण का अध्ययन किया होता तो वे ऐसी भूल कदापि न करते और उन 4 राजाओं का राजत्व काल मात्र 45 वर्ष लिखते न कि 345 वर्ष।

5. पूर्वपक्षी ने सम्भवतः इतिहास के प्रामाणिक ग्रन्थों तथा मुद्राशास्त्र का भी अध्ययन नहीं किया था। उनके द्वारा प्रमाणभूत मान्य [172]ह्वेनसाङ्ग के अनुसार पुरुषपुर

22. **बौद्धधर्म-दर्शन**–आचार्य नरेन्द्र देव। पृष्ठ 181-82
23. **महावंश**। 1/5-10
24 **आदि बुद्ध**–डॉ० कनाई लाल हाजरा। पृष्ठ 172 व 179
25. **विमर्शः**। पृष्ठ 25 व 27
26. **आदित्यवाहिनी पत्रिका**। वर्ष 4। अङ्क 1। आवरण पृष्ठ
संपादक–अ.श्री.वि.ज.शङ्कराचार्य पुरी पीठाधीश्वर स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती महाराज।
27. अ.श्री.वि.ज.शङ्कराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं शारदापीठाधीश्वर स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज।
28. **उत्तराम्नाय ज्योतिष्पीठ**–हिम्मतलाल उमियाशङ्कर दवे। गुजराती संस्करण वर्ष ई० सन् 1988। पृष्ठ 29-41
श्रीगुरुवंशपुराण (द्वितीय खण्ड)–श्रीमद् दण्डी स्वामी शिवबोधाश्रम। पृष्ठ 512-13।
29. **वहीं**।
30. **शङ्कर दिग्विजय**–माधवाचार्य–आङ्ल अनुवाद। विषय प्रवेश। पृष्ठ 18 पादटिप्पणी, पञ्चम आवृत्ति।
31. **कथा सरित्सागर**–2/3/31-83, 16/2/26-60, 18/3-5
32. **सत्यार्थ प्रकाश**। एकादश समुल्लास। अद्वैत समीक्षा।
33. **श्रीमज्जगद्गुरुशाङ्करमठविमर्श**–सं. राजगोपाल शर्मा। पृष्ठ 185-86
34. **शङ्कर दिग्विजय**–माधवाचार्य। 15/1
35. **राजा सुधन्वा और आदिशङ्कराचार्य**–परमेश्वरनाथ मिश्र
36. **मठाम्नाय सेतु**। 31 व 34
श्रीमज्जगद्गुरुशाङ्करमठविमर्श–सं. राजगोपाल शर्मा। पृष्ठ 649
37. **गुरुवंश काव्य**–काशी लक्ष्मण शास्त्री। 8/38-42
38. **वहीं**। 17/28-64
39. **भारत में अंग्रेजी राज्य**–सुन्दरलाल। प्रथम खण्ड। पृ० 345-46
40. **'भगवान आद्यशङ्कराचार्य और उनका समय' सिद्धान्त पत्रिका**। वर्ष 14। अक्टूबर अङ्क। पृष्ठ 90 पर प्रकाशित

41. **आदिशङ्कराचार्य और शृङ्गगिरिमठ**–परमेश्वरनाथ मिश्र
42. **प्राचीन भारत का इतिहास**–डॉ० विद्याधर महाजन पृष्ठ 601-2
43. **भारतीय जहाजरानी**–ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य : बलदेव सहाय पृष्ठ 49
44. **महावंश। सप्तम् परिच्छेद**
45. **प्राचीन भारत का इतिहास**–डॉ० विद्याधर महाजन पृष्ठ 603
46. **शंङ्कर विजय**–चित्सुखाचार्य। 32 / 12-16
47. **श्री शङ्कराचार्य चरित्रम्**–वेंकटाचल शर्मा। पृष्ठ 56
48. **शङ्कर दिग्विजय**–माधवाचार्य–2/54 व आचार्य बलदेव उपाध्याय की टिप्पणी
49. **श्री शङ्कराचार्य चरित्रम्**–वेंकटाचल शर्मा। पृष्ठ 57
50. **वहीं**। पृष्ठ 54
51. **श्रीमज्जगद्गुरुशाङ्करमठविमर्श**–सं. राजगोपाल शर्मा। पृष्ठ 21
52. **इण्डियन एण्टीक्वेरी**। खण्ड 7। पृष्ठ 282
53. **श्री शङ्कराचार्य चरित्रम्**–वेंकटाचल शर्मा। पृष्ठ 54
54. **वहीं**। पृष्ठ 50-51
55. **महानुशासनम्**। 1, 2, 9, 10, 13 व 26
56. **विमर्शः**। 25-26
57. **गोवर्द्धनमठ-पुरी की आचार्यावली**
58. **विमर्शः**। 26
59. **आदि शङ्कर द सेवियर ऑफ मैनकाइन्ड**। सं. एस. डी. कुलकर्णी। पृ० 283
60. **विमर्शः**। 26
61. **नेपाल का इतिहास**–अनु. मुंशी शिवशंकर सिंह व पंडित गुणानन्द। पृष्ठ 79 से 82 व पृष्ठ 102-3
    इण्डियन एण्टीक्वेरी। खण्ड 13। पृष्ठ 412-13
62. **श्रीमज्जगद्गुरुशाङ्करमठविमर्श**–सं. राजगोपाल शर्मा। पृष्ठ 362
63. **स्तोत्र रत्नावली**–प्रकाशक : गीता प्रेस। पृष्ठ 50-54
64. **माण्डूक्योपनिषद्**–शाङ्करभाष्य। 2
65. **आदिशङ्कराचार्यकालीन मुद्रा**–कार्षापण–परमेश्वरनाथ मिश्र
66. **ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य**–2/1/18
67. **वहीं** : 4/2/5

68. **आदिशङ्कराचार्यकालीन प्रमुख नगर**–परमेश्वरनाथ मिश्र
69. **द इकोनोग्राफी ऑफ तिब्बतन लामाइज्म**–ए० के० गार्डन। पृष्ठ 56
द आदि बुद्ध–डॉ० कनाईलाल हाजरा। पृष्ठ 192
70. **श्रीमद्‌भागवत महापुराण**–12/1/12-13
71. **संस्कृत साहित्य का इतिहास**–डॉ० वाचस्पति गैरोला। पृष्ठ 538-39
72. **विदेशी यात्रियों की नजर में भारत**–डॉ० परमानन्द पांचाल। पृष्ठ 22
73. **वैराग्य शतक**–भर्तृहरि। श्लो० 50
74. **संस्कृत साहित्य का इतिहास**–डॉ० वाचस्पति गैरोला। पृष्ठ 555-56
संस्कृत वाङ्मय कोश। प्रथम खण्ड। पृष्ठ 360 व 362
75. **प्राचीन चरित्रिकोश**–म. म. सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव। पृष्ठ 915-16
76. **कृष्ण चरित**–महाराज समुद्रगुप्त।16
77. **प्राचीन चरित्रकोश**–म. म. सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव। पृष्ठ 552-53
78. **वहीं**।
79. **संस्कृत वाङ्मय कोश**–द्वितीय खण्ड। पृष्ठ 398
80. **प्राचीन चरित्रकोश**–चित्राव। पृष्ठ 915-16
81. **पतञ्जलि कालीन भारत**–डॉ० प्रभुदयाल अग्निहोत्री। पृष्ठ 66-67
82. **राजतरंगिणी**–कल्हण। 1/172-76
83. **श्रीमज्जगद्‌गुरुशाङ्करमठविमर्श**–पृष्ठ 348
84. **प्रतिज्ञा यौगन्धरायणम्**–भास 4/2
85. **अर्थशास्त्रम्-कौटिल्य**–अनु. डॉ० वाचस्पति गैरोला। अधिकरण 10। प्र. 150-52। अ. 3
86. **प्रतिज्ञा यौगन्धरयणम्**–भास 2/13
87. **प्रतिमानाटकम्**–भास
88. **अर्थशास्त्रम् कौटिल्य**–अनु. डॉ० वाचस्पति गैरोला। अधिकरण 11 प्र. 1। अ. 1/3
89. **श्रीमद्‌भागवत महापुराण**–11/17/13
90. **संक्षिप्त स्कंद पुराण**–गीता प्रेस प्रकाशन। पृष्ठ 494
91. **सुबालोपनिषद्**–1/6
92. **महाभारत**–शान्ति पर्व राजधर्मानुशासन पर्व। अ. 44। श्लो० 68

93. **लघु हारित स्मृति**–12-13
94. **याज्ञवल्क्य स्मृतिः**–3/126
95. **मनुस्मृति**–1/31
96. **ऋग्वेद**–10/90/12
97. **यजुर्वेद**–31/11
98. **अथर्ववेद**–19/6/6
99. **श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण**–अरण्य काण्ड। सर्ग 14। श्लो० 30
100. **श्री विष्णुपुराण**–प्रथम अंश। अ. 6। श्लो. 6।
101. **श्रीमद्भगवद्गीता**–2/19-20
102. **कठोपनिषद्**–1/2/18-19
103. **कठोपनिषद्**–1/2/20
104. **श्वेताश्वतरोपनिषद्**–अ. 3। मन्त्र 20
105. **पुराणगत वेदविषयक सामग्री का अध्ययन**–डॉ० रमाशङ्कर भट्टाचार्य। पृष्ठ 324-25
106. **मुण्डकोपनिषद्**–2/2/4
107. **पंचतन्त्रम्**–मित्रभेद। 386
108. **चाणक्य नीति दर्पणः**–सं. जगदीश्वरानन्द सरस्वती 3/10
109. **महाभारत**–सभापर्व। 62/111
110. **मेघदूतम्**–उत्तरमेघः। 52
111. **स्वप्नवासवदत्तम्**–1/4
112. **महाभारत**–शान्तिपर्व। 174/19
113. **अध्यात्म रामायण**–अयोध्याकाण्ड। सर्ग 6। श्लो. 13
114. **भर्तृहरिकृत नीतिशतकम्**। 73
115. **मुद्राराक्षसम्**। 2/17
116. **पञ्चतन्त्रम्**–काकूलीयम्। 238
117. **पञ्चतन्त्रम्**–लब्धप्रवासम्। 14
118. **चाणक्य नीतिदर्पणः**। 2/6
119. **महाभारत**–आदिपर्व। 139/62
120. **पराशर स्मृतिः**। 4/17

121. **अत्रि संहिता**। 136

122. **चाणक्य नीतिदर्पणः**। 17/9

123. **बृहद्विष्णु स्मृति**। 25/16

124. **पञ्चतन्त्रम्–मित्रभेदः**। 207

125. **चाणक्य नीतिदर्पणः**। 2/1

126. **श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण**–अरण्यकाण्ड। सर्ग 45। श्लो. 29 की प्रथम व 30 की द्वितीय पंक्ति

127. **चाणक्य नीतिदर्पणः**। 1/13

128. **पञ्चतन्त्रम्**–मित्र सम्प्राप्ति। 144

129. **गरुड़ पुराण**। 110/1

130. **मनुस्मृतिः**। 8/15

131. **महाभारत**–वनपर्व। अ. 313। श्लो. 128

132. **शुक्रनीतिः**। 4/3/10-11

133. **मनुस्मृतिः**। 2/94

134. **महाभारत**–आदिपर्व। अ. 85। श्लो. 264

135. **अविमारकम्**। 1/12

136. **पञ्चतन्त्रम्**–मित्रभेद। 217

137. **प्रबोध चन्द्रोदयः; संस्कृत वाङ्मय कोश**–प्रथम खण्ड। पृष्ठ 300-301

138. **शुक्रनीतिः**। 2/250

139. **किरातार्जुनीयम्**। 2/30

140. **महाभाष्य**। 8/1/8

141. **चाणक्य नीतिदर्पणः**। 2/12

142. **महाभारत**–वनपर्व। 313/118

143. **चाणक्य नीतिदर्पणः**। 6/6

144. **नीतिशतकम्**। 62

145. **अभिज्ञान शाकुन्तलम्**। 5/12

146. **पञ्चतन्त्रम्**–मित्र सम्प्राप्ति। 157 व मित्रभेदः। 28

147. **नीति शतकम्**। 35 व 25

148. **वाल्मीकीय रामायण**--युद्धकाण्ड। सर्ग 109। श्लो. 25
149. **अध्यात्म रामायण**--युद्धकाण्ड। सर्ग 12। श्लोक 33
150. **मनुस्मृति**। 1/86
151. **पराशरस्मृति**। 1/23
152. **पद्मपुराण**। 1/18/440
153. **लिङ्गपुराण**। 1/39
154. **भविष्यपुराण**। 1/2/119
155. **संस्कृत वाङ्मय कोश**-प्रथमखण्ड। पृष्ठ 360 व 362
156. **महाभाष्य**। 5/3/99। पतञ्जलि कालीन भारत। पृष्ठ 57
157. **बुद्धचर्या**-राहुल सांकृत्यायन। पृष्ठ 508-10
158. **बुद्ध चरितम्**-अश्वघोष। सर्ग 28। श्लोक 54-57
159. **बुद्धचर्या**। पृष्ठ 556
160. **चीनी यात्री फाहियान का यात्रा विवरण**। पृष्ठ 76
161. **महाभाष्य**। 3/1/26। **पतञ्जलि कालीन भारत**। पृष्ठ 58
162. **अष्टाध्यायी पाणिनी**। 4/1/117, **पतञ्जलि कालीन भारत**। पृष्ठ 59
163. **राजतरंगिणी**-कल्हण। 1/172-176
164. **वहीं**। 4/402 व 488-489
165. **वाक्यपदीय**-भर्तृहरि। 2/484-489
166. **पतञ्जलि कालीन भारत**। पृष्ठ 65
167. **शतपथ ब्राह्मण**। 6/1/1/11
168. **शतपथ ब्राह्मण**। 10/4/3/19, 20
169. **पुराण-परिशीलन**-म. म. पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी। पृ० 219-21
170. **श्रीमद्भागवत महापुराण**। 12/1/18
171. **विष्णुपुराण**। 4/24/39-42
172. **प्राचीन भारत का इतिहास**-डॉ० श्रीनेत्र पाण्डेय। खण्ड 1। पृ० 694
173. **प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख**-डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त। खण्ड 1। पृ० 150-52
174. **वही**। पृ० 162-64

परिशिष्ट-1

राजा सुधन्वा की राजवंशावली

1. चाहमान
2. सामन्त देव
3. महादेव
4. कुबेर
5. बिन्दुसार
6. सुधन्वा

   यह आदिशङ्कराचार्य के समकालीन थे। आदिशङ्कराचार्य को युधिष्ठिर शक संवत् 2663 आश्विन शुक्ल 15 की तिथि से अंकित इनके द्वारा अर्पित की गयी ताम्रपत्र-विज्ञप्ति प्राप्त है।
7. वीरधन्वा
8. जयधन्वा
9. वीर सिंह
10. वर सिंह
11. वीरदंड
12. अरिमंत्र
13. माणिक्यराज
14. पुष्कर
15. असमंजस
16. प्रेमपुर
17. भानुराज
18. मानसिंह
19. हनुमान
20. चित्रसेन
21. शंभु
22. महासेन
23. सुरथ

24. रुद्रदत्त
25. हेमरथ
26. चित्रांगद
27. चन्द्रसेन
28. वत्सराज
29. धृष्टधुम्न
30. उत्तम
31. सुनीक
32. सुबाहु
33. सुरथ
34. भरत
35. सत्यकी
36. शत्रुजित
37. विक्रम
38. सहदेव
39. वीरदेव
40. वसुदेव
41. वासुदेव

इनका राज्याभिषेक विक्रम संवत् 608 अर्थात् ईसवी सन् 551 में हुआ था। इनकी एक शाखा में दिग्विजयी दिल्ली सम्राट् पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) तथा दूसरी शाखा में महमूद गजनवी के साथ युद्ध करने वाले वीर गोगा देव हुए थे।

42. सामन्त,
43. नरदेव, अपर नाम नृप
44. विग्रहराज (प्रथम)
45. चन्द्रराज (प्रथम)
46. गोपेन्द्र राज या गोपेन्द्रक
47. दुर्लभराज

विक्रम संवत् 850 अर्थात् ईसवी सन् 793 में वर्तमान।

42. रणधीर
43. शत्रुघ्न
44. शालिवाहन
45. कृतवर्मा
46. सुवर्मा
47. दिव्यवर्मा

48.	गोविन्दराज या गुवक प्रथम, यह प्रतिहार नरेश नागभट्ट द्वितीय का समकालीन था।	48.	यौवनाश्व
49.	चन्द्रराज (द्वितीय) विक्रम संवत् 900 से 925 अर्थात् ईसवी सन् 843 से 868।	49.	हर्यश्व
50.	गुवक द्वितीय (गोविन्द राज द्वितीय), विक्रम संवत् 925 से 950 अर्थात् ईसवी सन् 868 से 893।	50.	अजयपाल
51.	चन्दनराज, विक्रम संवत् 950 से 975 अर्थात् ईसवी सन् 893 से 918।	51.	भटदलन
52.	वाक्पतिराज, प्रथम (वप्पयराज), विक्रम संवत् 975 से 1000 अर्थात् ईसवी सन् 918 से 943। इनके तीन पुत्र थे-विंध्यराज, सिंहराज तथा लक्ष्मण = वत्सराज।	52.	अनंगराज
53.	(क) विंध्यराज यह अत्यल्प अवधि तक राज्य सिंहासन पर रहे पश्चात् इनके भाई सिंहराज नरेश हुए।		
53.	(ख) सिंहराज, इनके चार पुत्र थे-विग्रहराज द्वितीय, दुर्लभराज द्वितीय, चन्द्रराज तथा गोविन्द राज।	53.	भीमदेव
54.	(क) विग्रहराज द्वितीय विक्रम संवत् 1030 अर्थात् ईसवी सन् 973 से। ये इस वंश के महान् शासक थे इन्होंने गुजरात के शासक मूलराज को हराया तथा	54.	गोगादेव यह ईसवी सन् 1026 के लगभग महमूद गजनवी द्वारा भारत पर किये गये अन्तिम आक्रमण में उसके विरुद्ध

भृगुकच्छ (भड़ौच) में आशापुरा देवी का एक मन्दिर वनवाया। फिरिश्ता के अनुसार 997 ईसवी सन् में इन्होंने लाहौर के शासक की सहायता हेतु सुबक्तगीन के विरुद्ध सैन्य बल भेजा था। मुसलमानों के साथ भी इन्होंने युद्ध किया था।

बहादुरी से लड़े तथा वीरगति को प्राप्त हुए।

54. (ख) दुर्लभराज द्वितीय,
विक्रम संवत् 1055 अर्थात् ईसवी सन् 998 में वर्तमान। यह अपने भाई विग्रहराज द्वितीय के बाद महाराजाधिराज हुए।

55. गोन्दिराज तृतीय
विक्रम संवत् 1056 अर्थात् ईसवी सन् 999 में वर्तमान। ये दुर्लभराज द्वितीय के पुत्र थे।

56. (क) वाक्पतिराज द्वितीय,
विक्रम संवत् 1056 से 1075 अर्थात् ईसवी सन् 999 से 1018 तक।

56. (ख) वीर्यराज,
विक्रम संवत् 1075 से 1095 अर्थात् ईसवी सन् 1018 से 1038 तक। ये वाक्पतिराज द्वितीय के भाई थे।

56. (ग) चामुण्डराज,
विक्रम संवत् 1095 से 1120 अर्थात् ईसवी सन् 1038 से 1063। ये भी वाक्पति राज द्वितीय के भाई थे।

57. (क) सिंहत,
ये चामुण्डराज के जेष्ठ पुत्र थे।

57. (ख) दुर्लभराज तृतीय,
विक्रम संवत् 1120 से 1136 अर्थात् ईसवी सन् 1063 से 1079 तक। ये भी चामुण्डराज के पुत्र थे।

57. (ग) विग्रहराज तृतीय,
ये भी दुर्लभगज तृतीय के भाई थे। विक्रम संवत् 1136 से 1155 अर्थात् ईसवी सन् 1079 मे 1098 तक।

58. पृथ्वीराज, प्रथम

विक्रम संवत् 1155 से 1162 अर्थात् ईसवी सन् 1098 से 1105 तक।

59. अजय राज (अजयदेव या सल्हण)

विक्रम संवत् 1162 से 1189 अर्थात् ईसवी सन् 1105 से 1132 तक। इन्होंने अजमेर नगर बसाया।

60. अर्णोराज (अनलदेव, अन्ना या अनक उपनाम)

विक्रम संवत् 1189 से 1208 अर्थात् ईसवी सन् 1132 से 1151 तक।

61. (क) जगदेव

विक्रम संवत् 1208 अर्थात् ईसवी सन् 1151। इसने अपने पिता अर्णोराज का वध कर दिया जिसके कारण इसके भाई विग्रहराज चतुर्थ ने इसका वध कर दिया।

61. (ख) विग्रहराज चतुर्थ अपरनाम विशलदेव

विक्रम संवत् 1208 से 1224 अर्थात् ईसवी सन् 1151 से 1167 तक। ये एक महान् पराक्रमी शासक थे। इन्होंने चालुक्यों को हराया था।

61. (ग) सोमेश्वरदेव

ये विग्रहराज चतुर्थ के भाई थे। पृथ्वीराज द्वितीय के निःसन्तान मरने पर इनको राजा बनाया गया। विक्रम संवत् 1226 से 1234 अर्थात् ईसवी सन् 1169 से 1177 तक इन्होंने राज्य किया।

62. (क) अपर गांगेय अथवा अमर गांगेय

ये विग्रहराज चतुर्थ के पुत्र थे।

62. (ख) पृथ्वीराज द्वितीय (पृथ्वी भट्ट)

यह पितृहंता जगदेव का पुत्र था। अपर गांगेय को हराकर इसने राज्य प्राप्त किया। विक्रम संवत् 1226 अर्थात् ईसवी सन् 1169 में यह निःसन्तान मरा।

62. (ग) पृथ्वीराज तृतीय

विक्रम संवत् 1234 से 1248 अर्थात् ईसवी सन् 1177 से 1192 तक। यह भारत के अंतिम क्षत्रिय हिन्दू सम्राट् एवं दिग्विजयी योद्धा थे। मुहम्मद गोरी को तरावडी (= तराइन) के प्रथम संग्राम में इन्होंने बुरी तरह परास्त किया। किसी तरह से वह अपनी जान बचाकर भागा परन्तु तराइन के दूसरे युद्ध में छल प्रपंच का सहारा लेकर देशद्रोही कन्नौज राज जयचन्द की मदद से मुहम्मद गोरी ने इनको पराजित कर दिया।

परिशिष्ट-2 (क)

राजा सुधन्वा की ताम्रपत्र-विज्ञप्ति

श्रीमहाकालनाथाय नमः

श्री महाकाल्यै नमः

श्रीमत्सदाशिवापरावतारमूर्ति चतुष्षष्टिकलाविलासविहारमूर्ति बौद्धादिसर्ववादिदानवनृसिंहमूर्ति वर्णाश्रमवैदिकसिद्धान्तोद्धारकमूर्ति मामकीनसाम्राज्यव्यवस्थापनमूर्ति विश्वेश्वरविश्वगुरुपदजगज्जेगीयमानमूर्ति निखिलयोगिचक्रवर्त्ति श्रीमच्छङ्करभगवत्पादपादपद्मयोः भ्रमरायमाणसुधन्वनो मम सोमवंशचूडामणियुधिष्ठिरपारम्पर्य्यपरिप्राप्तभारतवर्षस्याञ्जलिबन्धपूर्विकेयं राजन्यस्य विज्ञप्तिः। भगवद्भिर्दिग्विजयोऽकारि। सर्ववादिनः पराकृताः। सर्वे वर्णा आश्रमाश्च कृतयुगवत्पूर्णे वैदिकाध्वनि नियोजिताः सन्तो यथाशास्त्रमाचरन्ति हि धर्मम्। ब्रह्मविष्णुमहेश्वरमहेश्वरीस्थानान्यशेषदेशवर्त्तीन्युद्धृतानि। सर्वं ब्रह्मकुलमुद्धारितम्। विशिष्यास्मद्राज्यकुलमान्वीक्षिक्याद्यशेषराजतन्त्रपरिशीलनेनोन्नीतं भवति। ब्रह्मक्षत्राद्यस्मत्प्रमुखनिखिलविनेयलोकसम्प्रार्थनया चतस्रो धर्मराजधान्यो जगन्नाथ-बदरी-द्वारका-शृङ्गर्षिक्षेत्रेषु भोगवर्द्धन ज्योतिश्शारदा शृङ्गेरीमठापरसञ्ज्ञकाः संस्थापिताः। तत्रोत्तरदिशो योगिजनप्राधान्येन धर्ममर्यादारक्षणं सुकरमेवेति ज्योतिर्मठे श्रीतोटकापरनाम्नः प्रतर्दनाचार्यानथ शृङ्गर्ष्याश्रमे शृङ्गर्षिसमस्वभावान्पृथ्वीधराभिधेयहस्तामलकाचार्यान् भोगवर्धने स्वत एवाभिमतत्त्वेनात्यन्तोग्रस्वभावानपि सर्वज्ञकल्पपद्मपादापरनामसनन्दनाचार्यानथ बौद्धकापालिकादि-सकलवादिभूयिष्ठपश्चिमायां दिशि वादिदैत्याङ्कुरः पुनर्माभवत्विति शारदापीठे किल द्वारकायां जैनैरुत्सादितवज्रनाभनिर्मितभगवदालयादिदुर्दशां दूरीकृत्य भगवद्भिस्त्रिलोकसुन्दरनाम्ना पुनस्सन्निबद्धभगवदालयश्रीकृष्णादिसकलमर्यादासुसंस्कृतायामधिगताशेषलौकिकवैदिकतन्त्रा विश्वविख्यात-कीर्तिसर्वज्ञानमयान्विश्वरूपापरनामसुरेश्वराचार्यांश्चास्मत्सर्वलोकाभिमतिपूर्वकमभिषिच्यैवं चतुर्भ्य आचार्य्येभ्यश्चतसृषु दिशु आदिष्टा भारतवर्षस्य। त एते तत्तत्पीठप्रणाड्या निजनिजमेव मण्डलं गोपायन्तो वैदिकमार्गमुद्भासयन्तु। सर्वे वयं तत्तन्मण्डलस्था ब्रह्मक्षत्रादयस्तत्तन्मण्डलस्यैवाचार्यस्याधि-काराधिकृता वर्तिष्यामहे च। महद्विनिर्णयप्रसक्तौ तु सुरेश्वराचार्य्या एवोक्तलक्षणतः सर्वत्रैव व्यवस्थापका भवन्तु भगवतामनुशासनाच्च। अस्मद्राजसत्तेव निरङ्कुशगुरुसत्ताप्युक्तमर्यादया जगत्यविचलं विचलतु। परिव्राजको हि महाकुलीनत्त्ववैदुष्यादिविशिष्टाचार्यलक्षणैरन्वित एव श्रीभगवत्पादपीठानामधिकारमर्हति

न तु विनिमयेनेत्येवमादिनियमबन्धो भगवदाज्ञासमवबुद्धसमस्तैरथास्मदादिब्रह्मक्षत्रादि वंशोद्भवैः परमप्रेम्णोत्तमाङ्गेनाद्रियत इत्येतां विज्ञप्तिमङ्गीकुर्वत भगवन्त इति स्वस्त्यस्तु लोकेभ्यः। युधिष्ठिरशके 2663 आश्विनशुक्ल 15।

सुधन्वा सार्वभौमः

परिशिष्ट-2 (ख)

राजा सुधन्वा की ताम्रपत्र-विज्ञप्ति का हिन्दी भाषान्तर

श्री महाकालनाथ को नमस्कार

श्री महाकाली को नमस्कार

श्रीमत् सदाशिव की अपरावतार मूर्ति, चौंसठ कलाओं के विलास की विहार मूर्ति, बौद्ध आदि समस्त वादिरूप दानवों के लिये नृसिंह मूर्ति, वर्णाश्रमयुक्त वैदिक सिद्धांत की उद्धारक मूर्ति, मेरे साम्राज्य की व्यवस्थापक मूर्ति, विश्वेश्वर और जगद्‌गुरु पद से संसार द्वारा गेय मूर्ति, सम्पूर्ण योगियों के चक्रवर्ती श्रीमत् शङ्कर भगवत्पाद के पादपद्मों के भ्रमर मुझ राजा सुधन्वा की, जिसे सोमवंश चूड़ामणि युधिष्ठिर की परम्परा से भारतवर्ष की राजसत्ता प्राप्त है करबद्ध विज्ञप्ति। भगवत् ने दिग्विजय कर लिया है। सभी वादियों को पराजित कर दिया है। समस्त वर्ण और आश्रम इस समय सत्‌युग के समान वैदिकमार्ग में नियुक्त होकर शास्त्रानुसार धर्माचरण कर रहे हैं। (भगवत्पाद) सम्पूर्ण देश में अवस्थित ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर तथा महेश्वरी के देवस्थानों का उद्धार कर चुके हैं। समस्त ब्राह्मण कुलों का उद्धार कर चुके हैं। विशेषकर आन्वीक्षकी आदि अन्य राजतंत्र के परिशीलन से हम राजकुलों की उन्नति हुई है। हमलोगों जैसे प्रमुख ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि तथा सम्पूर्ण लोक की प्रार्थना पर (भगवत्पाद ने) चार धर्मराजधानियों को गोवर्द्धन, ज्योति, शारदा तथा शृङ्गेरी मठ के नाम से जगन्नाथ, बदरी, द्वारका तथा शृङ्ग ऋषि के क्षेत्र में संस्थापित किया। वहाँ उत्तर दिशा में योगिजनों की प्रधानता से धर्ममर्यादा की रक्षा सरलता से करने हेतु ज्योतिर्मठ में श्रीतोटक अपरनाम प्रतर्दनाचार्य को, शृङ्गऋषि के आश्रम में उन्हीं के समान स्वभाव वाले पृथ्वीधर अपरनाम हस्तामलकाचार्य को, भोगवर्द्धन में अपने से ही विचारणीय विषयों में अभिमत रखने वाले, अत्यन्त उग्र स्वभाव के होने पर भी सब कुछ जानने में समर्थ पद्मपाद अपरनाम सनन्दनाचार्य को तथा बौद्ध कापालिक आदि समस्त वादियों से भरपूर पश्चिम दिशा में वादिदैत्याङ्कुर पुनः अंकुरित न हो जाये इस प्रयोजन से शारदापीठ द्वारका में (कृष्ण के प्रपौत्र) वज्रनाभ द्वारा निर्मित तथा जैनियों के द्वारा

ध्वस्त भगवदालय की दुर्दशा को दूर कर त्रैलोक्य सुन्दर नामक पुनः निर्मित भगवदालय में श्रीकृष्ण आदि को सम्पूर्ण मर्यादा से सुसंस्कृत कर प्रतिष्ठित कर समस्त लौकिक तथा वैदिक तंत्र में विश्वविख्यात कीर्तिप्राप्त सर्वज्ञानमय विश्वरूप अपरनाम सुरेश्वराचार्य को हम सब लोगों की लोक सम्पत्ति से अभिषिक्त कर भारतवर्ष की चारों दिशाओं में चार आचार्यों को अधिष्ठित कर आदेश दिया कि वे अपने-अपने पीठ की मर्यादा के अनुसार अपने-अपने मण्डल की रक्षा करते हुए वैदिक मार्ग को उद्भासित करें। हम सभी उन मण्डलस्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि उन मण्डलों के अधिकारी आचार्यों की आज्ञा का पालन करते हुए व्यवहार करें। महत्वपूर्ण निर्णय की स्थिति में उपर्युक्त लक्षणों से युक्त सुरेश्वराचार्य सर्वत्र व्यवस्थापक हों यह भगवत्पाद का अनुशासन है। हमारी राज सत्ता के समान निरंकुश गुरुसत्ता मर्यादानुसार संसार में अविचल रूप से अच्छी तरह चले। महाकुलीन, वैदुष्यादि विशिष्ट आचार्य गुणों से युक्त परिव्राजक ही श्री भगवत्पाद के पीठों में अधिकार रखता है किसी प्रकार के विनिमय से नहीं। भगवत्पाद की आज्ञानुसार नियमों में बँधे हुए हम सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वंशों में उत्पन्न हुए लोग परम प्रेम से इस आज्ञा को स्वीकार करते हैं। इस विज्ञप्ति को भगवन्त स्वीकार करें। विश्व का कल्याण हो। युधिष्ठिर शक 2663 आश्विन शुक्ल 15।

सम्राट् सुधन्वा

टिप्पणी : डॉ० दशरथ शर्मा अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर लिखते हैं कि गोत्रोच्चार के अनुसार चौहान सोमवंशी ठहरते हैं। इतिहासकार श्यामल दास के अनुसार अग्निकुल के राजपूत मूलतः चन्द्रवंशी और सूर्यवंशी क्षत्री थे। कालान्तर में इन्होंने बौद्धमत अपना लिया था जिसके कारण व्रात्यस्तोम यज्ञ करके इन्हें पुनः सनातन पंथ की मुख्य धारा में लाना पड़ा। यज्ञाग्नि से इनका पुनः संस्कार होने के कारण ये अग्निकुल के राजपूत कहलाये। कर्नल टाड चौहानों को सोमवंश की एक शाखा (यदुवंश) से सम्बन्धित मानते हैं। सुधन्वा अपने को युधिष्ठिर की परम्परा से प्राप्त राज्य का स्वामी कहते हैं। महाभारत से ज्ञात होता है कि युधिष्ठिर ने यादवों के गृहयुद्ध के पश्चात् अन्धकवंशी कृतवर्मा के पुत्र को मार्तिकावत, शिनिवंशी सात्यकि के पुत्र यौयुधानि को सरस्वती नदी के तटवर्ती क्षेत्रों तथा इन्द्रप्रस्थ का राज्य श्री कृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ को, श्री कृष्ण की मृत्यु के पश्चात् दे दिया था। माहिष्मती का राज्य भी युधिष्ठिर द्वारा ही वहाँ के राजा को दिया गया था यह जैमिनी के अश्वमेध पर्व से ज्ञात होता है। कर्नल टाड, डॉ० रमेश चन्द्र मजुमदार एवं राजस्थानी इतिवृत्त चौहानों का मूल राज्य माहिष्मती को ही मानते हैं।

परिशिष्ट-3

शारदापीठ-द्वारका की आचार्य परम्परा

	आचार्य का नाम	आचार्यत्व समापन की तिथि	पीठासीनकाल लगभग
1.	श्री सुरेश्वराचार्य	चैत्र कृष्ण 8 यु. सं. 2691 तुल्य ई. पू. 447	42 वर्ष
2.	श्री चित्सुखाचार्य	पौष शुक्ल 3 यु. सं. 2715 तुल्य ई. पू. 423	24 वर्ष
3.	श्री सर्वज्ञानाचार्य	श्रावण शुक्ल 11 यु. सं. 2774 तुल्य ई. पू. 364	59 वर्ष
4.	श्री ब्रह्मानन्दतीर्थ	श्रावण शुक्ल 1 यु. सं. 2823 तुल्य ई. पू. 315	49 वर्ष
5.	श्री स्वरूपाभिज्ञानाचार्य	ज्येष्ठ अमावस्या यु. सं. 2890 तुल्य ई. पू. 248	67 वर्ष
6.	श्री मंगलमूर्त्याचार्य	पौष शुक्ल 14 यु. सं. 2942 तुल्य ई. पू. 196	52 वर्ष
7.	श्री भास्कराचार्य	पौष शुक्ल 12 यु. सं. 2965 तुल्य ई. पू. 173	23 वर्ष
8.	श्री प्रज्ञानाचार्य	आषाढ़ शुक्ल 7 यु. सं. 3008 तुल्य ई. पू. 130	43 वर्ष
9.	श्री ब्रह्मज्योत्स्नाचार्य	चैत्र कृष्ण 4 यु. सं. 3040 तुल्य ई. पू. 98	32 वर्ष
10.	श्री आनन्दाविर्भावाचार्य	फाल्गुन शुक्ल 9 वि. सं. 9 तुल्य ई. पू. 47	51 वर्ष
11.	श्री कलानिधि तीर्थ	पौष शुक्ल 6 वि. सं 82 तुल्य ई. सन् 26	73 वर्ष
12.	श्री चिद्विलासाचार्य	मार्गशीर्ष शुक्ल 13 वि. सं. 119 तुल्य ई. सन् 63	37 वर्ष
13.	श्री विभूत्यानन्दाचार्य	श्रावण कृष्ण 11 वि. सं. 154 तुल्य ई. सन् 98	35 वर्ष

	आचार्य का नाम	आचार्यत्व समापन की तिथि	पीठासीनकाल लगभग
14.	श्री स्फूर्तिनिलयपाद	आषाढ़ शुक्ल 6 वि. सं. 203 तुल्य ई. सन् 147	49 वर्ष
15.	श्री वरतन्तुपाद	आषाढ़ कृष्ण 3 वि. सं 259 तुल्य ई. सन् 203	56 वर्ष
16.	श्री योगरूढ़ाचार्य	मार्गशीर्ष कृष्ण 11 वि. सं. 360 तुल्य ई. सन् 304	101 वर्ष
17.	श्री विजयडिण्डिमाचार्य	पौष कृष्ण 8 वि. सं. 394 तुल्य ई. सन् 338	34 वर्ष
18.	श्री विद्यातीर्थ	चैत्र शुक्ल 1 वि. सं. 437 तुल्य ई. सन् 381	43 वर्ष
19.	श्री चिच्छक्तिदेशिक	आषाढ़ शुक्ल 12 वि. सं. 438 तुल्य ई. सन् 382	01 वर्ष
20.	श्री विज्ञानेश्वर तीर्थ	आश्विन शुक्ल 15 वि. सं. 511 तुल्य ई. सन् 455	73 वर्ष
21.	श्री ऋतम्भराचार्य	माघ शुक्ल 10 वि. सं. 572 तुल्य ई. सन् 516	61 वर्ष
22.	श्री अमरेश्वर गुरु	भाद्रपद कृष्ण 6 वि. सं. 608 तुल्य ई. सन् 552	36 वर्ष
23.	श्री सर्वतोमुख तीर्थ	पौष शुक्ल 4 वि. सं. 669 तुल्य ई. सन् 613	61 वर्ष
24.	श्री आनन्ददेशिक	वैशाख कृष्ण 5 वि. सं. 721 तुल्य ई. सन् 665	52 वर्ष
25.	श्री समाधिरसिक	फाल्गुन शुक्ल 12 वि. सं. 799 तुल्य ई. सन् 743	78 वर्ष
26.	श्री नारायणाश्रम	चैत्र शुक्ल 14 वि. सं. 836 तुल्य ई. सन् 780	37 वर्ष
27.	श्री वैकुण्ठाश्रम	आषाढ़ कृष्ण 6 वि. सं. 885 तुल्य ई. सन् 829	49 वर्ष
28.	श्री (त्रि) विक्रमाश्रम	आषाढ़ शुक्ल 3 वि. सं. 911 तुल्य ई. सन् 855	26 वर्ष
29.	श्री नृसिंहाश्रम	ज्येष्ठ कृष्ण 14 वि. सं. 960 तुल्य ई. सन् 904	49 वर्ष

	आचार्य का नाम	आचार्यत्व समापन की तिथि	पीठासीनकाल लगभग
30.	श्री त्र्यम्बकाश्रम	वैशाख अमावस्या वि. सं. 965 तुल्य ई. सन् 909	05 वर्ष
31.	श्री विष्णवाश्रम	ज्येष्ठ शुक्ल 1 वि. सं. 1001 तुल्य ई. सन् 945	36 वर्ष
32.	श्री केशवाश्रम	माघ कृष्ण 5 वि. सं. 1060 तुल्य ई. सन् 1004	59 वर्ष
33.	श्री चिदम्बराश्रम	मार्गशीर्ष कृष्ण 9 वि. सं. 1083 तुल्य ई. सन् 1027	23 वर्ष
34.	श्री पद्मनाभाश्रम	ज्येष्ठ शुक्ल 15 वि. सं. 1109 तुल्य ई. सन् 1053	26 वर्ष
35.	श्री महादेवाश्रम	श्रावण कृष्ण 9 वि. सं. 1148 तुल्य ई. सन् 1092	39 वर्ष
36.	श्री सच्चिदानन्दाश्रम	आश्विन कृष्ण 5 वि. सं. 1207 तुल्य ई. सन् 1151	59 वर्ष
37.	श्री विद्याशङ्कराश्रम	आश्विन कृष्ण 4 वि. सं. 1265 तुल्य ई. सन् 1209	58 वर्ष
38.	श्री अभिनव सच्चिदानन्दाश्रम	वैशाख शुक्ल 6 वि. सं. 1293 तुल्य ई. सन् 1237	28 वर्ष
39.	श्री शशिशेखराश्रम	वैशाख शुक्ल 1 वि. सं. 1326 तुल्य ई. सन् 1270	33 वर्ष
40.	श्री वासुदेवाश्रम	फाल्गुन कृष्ण 10 वि. सं. 1362 तुल्य ई. सन् 1306	36 वर्ष
41.	श्री पुरुषोत्तमाश्रम	माघ कृष्ण 5 वि. सं. 1394 तुल्य ई. सन् 1338	32 वर्ष
42.	श्री जनार्दनाश्रम	भाद्रपद शुक्ल 15 वि. सं. 1408 तुल्य ई. सन् 1352	14 वर्ष
43.	श्री हरिहराश्रम	श्रावण शुक्ल 11 वि. सं. 1411 तुल्य ई. सन् 1355	03 वर्ष
44.	श्री भवाश्रम	वैशाख कृष्ण 5 वि. सं. 1421 तुल्य ई. सन् 1365	10 वर्ष
45.	श्री ब्रह्माश्रम	आषाढ़ शुक्ल 9 वि. सं. 1436 तुल्य ई. सन् 1380	15 वर्ष

	आचार्य का नाम	आचार्यत्व समापन की तिथि	पीठासीनकाल लगभग
46.	श्री वामनाश्रम	चैत्र कृष्ण 12 वि. सं. 1453 तुल्य ई. सन् 1397	17 वर्ष
47.	श्री सर्वज्ञाश्रम	चैत्र कृष्ण 8 वि. सं. 1489 तुल्य ई. सन् 1433	36 वर्ष
48.	श्री प्रद्युम्नाश्रम	चैत्र शुक्ल 7 वि. सं. 1495 तुल्य ई. सन् 1439	06 वर्ष
49.	श्री गोविन्दाश्रम	ज्येष्ठ कृष्ण 4 वि. सं. 1523 तुल्य ई. सन् 1467	28 वर्ष
50.	श्री चिदाश्रम	फाल्गुन शुक्ल 2 वि. सं. 1576 तुल्य ई. सन् 1520	53 वर्ष
51.	श्री विश्वेश्वराश्रम	मार्गशीर्ष शुक्ल 1 वि. सं. 1608 तुल्य ई. सन् 1552	32 वर्ष
52.	श्री दामोदराश्रम	चैत्र कृष्ण 5 वि. सं. 1615 तुल्य ई. सन् 1559	07 वर्ष
53.	श्री महादेवाश्रम	चैत्र शुक्ल 1 वि. सं. 1616 तुल्य ई. सन् 1560	01 वर्ष
54.	श्री अनिरुद्धाश्रम	माघ कृष्ण 4 वि. सं. 1625 तुल्य ई. सन् 1569	09 वर्ष
55.	श्री अच्युताश्रम	श्रावण कृष्ण 6 वि. सं. 1629 तुल्य ई. सन् 1573	04 वर्ष
56.	श्री माधवाश्रम	माघ कृष्ण 4 वि. सं. 1665 तुल्य ई. सन् 1609	36 वर्ष
57.	श्री अनन्ताश्रम	चैत्र शुक्ल 12 वि. सं. 1716 तुल्य ई. सन् 1660	51 वर्ष
58.	श्री विश्वरूपाश्रम	श्रावण कृष्ण 2 वि. सं. 1721 तुल्य ई. सन् 1665	05 वर्ष
59.	श्री चिद्घनाश्रम	माघ शुक्ल 6 वि. सं. 1726 तुल्य ई. सन् 1670	05 वर्ष
60.	श्री नृसिंहाश्रम	वैशाख शुक्ल 4 वि. सं. 1735 तुल्य ई. सन् 1679	09 वर्ष

	आचार्य का नाम	आचार्यत्व समापन की तिथि	पीठासीनकाल लगभग
61.	श्री मनोहराश्रम	भाद्र शुक्ल 9 वि. सं. 1761 तुल्य ई. सन् 1705	26 वर्ष
62.	श्री प्रकाशानन्द सरस्वती	आश्विन कृष्ण 6 वि. सं. 1795 तुल्य ई. सन् 1739	34 वर्ष
63.	श्री विशुद्धानन्दाश्रम	वैशाख अमावस्या वि. सं. 1799 तुल्य ई. सन् 1743	04 वर्ष
64.	श्री वामनेन्द्राश्रम	श्रावण शुक्ल 6 वि. सं. 1831 तुल्य ई. सन् 1775	32 वर्ष
65.	श्री केशवाश्रम	कार्तिक कृष्ण 9 वि. सं. 1838 तुल्य ई. सन् 1782	07 वर्ष
66.	श्री मधुसूदनाश्रम	माघ शुक्ल 5 वि. सं. 1848 तुल्य ई. सन् 1792	10 वर्ष
67.	श्री हयग्रीवाश्रम	वि. सं. 1862 तुल्य ई. सन् 1806	14 वर्ष
68.	श्री प्रकाशाश्रम	वि. सं. 1863 तुल्य ई. सन् 1807	01 वर्ष
69.	श्री हयग्रीवानन्द सरस्वती	वि. सं. 1874 तुल्य ई. सन् 1818	11 वर्ष
70.	श्री श्रीधराश्रम	वि. सं. 1914 तुल्य ई. सन् 1858	40 वर्ष
71.	श्री दामोदराश्रम	वि. सं. 1928 तुल्य ई. सन् 1872	14 वर्ष
72.	श्री केशवाश्रम	आश्विन कृष्ण 7 वि. सं. 1935 तुल्य ई. सन् 1879	07 वर्ष
73.	श्री राजराजेश्वरशङ्कराश्रम	आषाढ़ शुक्ल 5 वि. सं. 1957 तुल्य ई. सन् 1901	22 वर्ष
74.	श्री माधवतीर्थ	भाद्रपद अमावस्या वि. सं. 1972 तुल्य ई. सन् 1916	14 वर्ष
75.	श्री शान्त्यानन्द सरस्वती	वि. सं. 1982 तुल्य ई. सन् 1926	10 वर्ष
76.	श्री चन्द्रशेखराश्रम	वि. सं. 2001 तुल्य ई. सन् 1945	19 वर्ष
77.	श्री अभिनवसच्चिदानन्द	वि. सं. 2038 तुल्य ई. सन् 1982	37 वर्ष
78.	श्री स्वरूपानन्द सरस्वती		अबतक वर्तमान

टिप्पणी–

1. 76वें आचार्य श्रीअभिनव सच्चिदानन्द का अभिषेक ज्येष्ठ शुक्ल 10 विक्रम संवत् 2001 तुल्य ई. सन् 20 जून 1945 को हुआ था ।

2. अ० श्री जगद्‌गुरु शङ्कराचार्य स्वरूपानन्द सरस्वती, 78वें आचार्य का अभिषेक ज्येष्ठ शुक्ल 5 विक्रम संवत् 2038 तुल्य ई० सन् 27 मई 1982 को हुआ था तब से अब तक वे शंकाराचार्य के पद पर विराजमान हैं।
3. उपर्युक्त सूची में काल क्रम गुजरात में प्रचलित विक्रम संवत् में दिया गया है। वहाँ पर विक्रम संवत् का आरम्भ कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से माना जाता है जिसके कारण देश के अन्य हिस्सों में प्रचलित विक्रम सम्वत् से गुजरात का विक्रम सम्वत् सात माह पश्चात् आरम्भ होता है। अतः गुजरात के विक्रम सम्वत् को ईसवी सन् में परिवर्तित करने के लिए 56 अथवा 57 वर्ष घटाना पड़ता है। यहाँ पर सर्वत्र 56 वर्ष का ही वियोग किया गया है जिसके कारण ईसवी सन् में दिये गये वर्ष में कहीं-कहीं एक वर्ष का अन्तर हो सकता है। इसी प्रकार से आचार्यत्व काल भी निकटतम वर्षों में दिया गया है परन्तु कहीं-कहीं एक वर्ष का अन्तर हो सकता है।
4. 1 से 29 क्रमाङ्कों पर आने वाले आचार्यों के आचार्यत्व की समापन की तिथि ईसवी सन् की नौवीं सदी की एक उपलब्ध सूची के आधार पर इस पीठ के 73वें तथा 75वें आचार्यों द्वारा अलग-अलग तैयार की गई है। 29वें आचार्य ने अपने विमर्श ग्रन्थ में लिखा है कि उक्त सूची गलिताक्षरों में उपलब्ध थी जिसके कारण कुछ तिथियों को पढ़ने में असुविधा थी। पश्चात् 75वें आचार्य ने अन्य उपलब्ध स्रोतों के आधार पर पूर्ण पाठ पढ़कर सूची प्रकाशित किया। इस सूची में 21वें क्रम पर आने वाले आचार्य का नाम विमर्श के रचनाकार नहीं पढ़ सके थे जिसके कारण उनके द्वारा तैयार की गई सूची में इनका नाम नहीं पाया जाता। 15वें आचार्य का काल 73वें आचार्य ने उक्त सूची के पाठ को 249 तथा 75वें आचार्य ने 259 पढ़ा जिसके आधार पर 16वें आचार्य का आचार्यत्व काल क्रमशः 111 व 101 वर्ष प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त दोनों ही पाठ शुद्ध नहीं पढ़े जा सके हैं सम्भवतः शुद्ध पाठ 289 है। मध्य के 8 को ही गलिताक्षरों में होने के कारण क्रमशः 4 व 5 पढ़ा गया। इस पाठ को मानने पर हमें 15वें व 16वें आचार्यों का आचार्यत्वकाल क्रमशः 86 वर्ष व 71 वर्ष प्राप्त होता है।

परिशिष्ट-4

गोवर्द्धनपीठ-पुरी की आचार्य परम्परा

	आचार्य का नाम	आचार्यत्व समापन वर्ष	पीठासीन काल लगभग
1.	श्री पद्मपाद	गत कलि संवत् 2642 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 459	24 वर्ष
2.	श्री शूलपाणि	गत कलि संवत् 2662 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 439	20 वर्ष
3.	श्री नारायण	गत कलि संवत् 2679 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 422	17 वर्ष
4.	श्री विद्यारण्य	गत कलि संवत् 2697 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 404	18 वर्ष
5.	श्री वामदेव	गत कलि संवत् 2713 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 388	16 वर्ष
6.	श्री पद्मनाभ	गत कलि संवत् 2728 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 373	15 वर्ष
7.	श्री जगन्नाथ	गत कलि संवत् 2742 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 359	14 वर्ष
8.	श्री मधुरेश्वर	गत कलि संवत् 2752 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 349	10 वर्ष
9.	श्री गोविन्द	गत कलि संवत् 2773 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 328	21 वर्ष
10.	श्री श्रीधर	गत कलि संवत् 2791 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 310	18 वर्ष
11.	श्री माधवानन्द	गत कलि संवत् 2808 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 293	17 वर्ष
12.	श्री कृष्णब्रह्मानन्द	गत कलि संवत् 2826 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 275	18 वर्ष
13.	श्री रामानन्द	गत कलि संवत् 2842 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 259	16 वर्ष
14.	श्री वागीश्वर	गत कलि संवत् 2857 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 244	15 वर्ष
15.	श्री परमेश्वर	गत कलि संवत् 2871 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 230	14 वर्ष
16.	श्री गोपाल	गत कलि संवत् 2883 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 218	12 वर्ष
17.	श्री जनार्दन	गत कलि संवत् 2897 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 204	14 वर्ष
18.	श्री ज्ञानानन्द	गत कलि संवत् 2917 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 184	20 वर्ष
19.	श्री बृहदारण्य	गत कलि संवत् 2936 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 165	19 वर्ष
20.	श्री महादेव	गत कलि संवत् 2954 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 147	18 वर्ष
21.	श्री परमब्रह्मानन्द	गत कलि संवत् 2970 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 131	16 वर्ष
22.	श्री रामानन्द	गत कलि संवत् 2985 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 116	15 वर्ष
23.	श्री सदाशिव	गत कलि संवत् 2999 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 102	14 वर्ष
24.	श्री हरीश्वरानन्द	गत कलि संवत् 3011 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 90	12 वर्ष
25.	श्री बोधानन्द	गत कलि संवत् 3025 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 76	14 वर्ष
26.	श्री रामकृष्ण	गत कलि संवत् 3045 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 56	20 वर्ष
27.	श्री चिद्बोधात्म	गत कलि संवत् 3055 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 46	10 वर्ष

	आचार्य का नाम	आचार्यत्व समापन वर्ष	पीठासीन काल लगभग
28.	श्री तत्वक्षवर	गत कलि संवत् 3073 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 28	18 वर्ष
29.	श्री शङ्कर	गत कलि संवत् 3089 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 12	16 वर्ष
30.	श्री वासुदेव	गत कलि संवत् 3109 तुल्य ईसवी सन् 8	20 वर्ष
31.	श्री हयग्रीव	गत कलि संवत् 3126 तुल्य ईसवी सन् 25	17 वर्ष
32.	श्री स्मृतीश्वर	गत कलि संवत् 3140 तुल्य ईसवी सन् 39	14 वर्ष
33.	श्री विद्यानन्द	गत कलि संवत् 3160 तुल्य ईसवी सन् 59	20 वर्ष
34.	श्री मुकुन्दानन्द	गत कलि संवत् 3178 तुल्य ईसवी सन् 77	18 वर्ष
35.	श्री हिरण्यगर्भ	गत कलि संवत् 3197 तुल्य ईसवी सन् 96	19 वर्ष
36.	श्री नित्यानन्द	गत कलि संवत् 3215 तुल्य ईसवी सन् 114	18 वर्ष
37.	श्री शिवानन्द	गत कलि संवत् 3231 तुल्य ईसवी सन् 130	16 वर्ष
38.	श्री योगीश्वर	गत कलि संवत् 3249 तुल्य ईसवी सन् 148	18 वर्ष
39.	श्री सुदर्शन	गत कलि संवत् 3264 तुल्य ईसवी सन् 163	15 वर्ष
40.	श्री व्योमकेश	गत कलि संवत् 3281 तुल्य ईसवी सन् 180	17 वर्ष
41.	श्री दामोदर	गत कलि संवत् 3302 तुल्य ईसवी सन् 201	21 वर्ष
42.	श्री योगानन्द	गत कलि संवत् 3322 तुल्य ईसवी सन् 221	20 वर्ष
43.	श्री गोलकेश	गत कलि संवत् 3343 तुल्य ईसवी सन् 242	21 वर्ष
44.	श्री कृष्णानन्द	गत कलि संवत् 3361 तुल्य ईसवी सन् 260	18 वर्ष
45.	श्री देवानन्द	गत कलि संवत् 3384 तुल्य ईसवी सन् 283	23 वर्ष
46.	श्री चन्द्रचूड	गत कलि संवत् 3399 तुल्य ईसवी सन् 298	15 वर्ष
47.	श्री हलायुध	गत कलि संवत् 3413 तुल्य ईसवी सन् 312	14 वर्ष
48.	श्री सिद्धसेव्य	गत कलि संवत् 3428 तुल्य ईसवी सन् 327	15 वर्ष
49.	श्री तारकात्मा	गत कलि संवत् 3448 तुल्य ईसवी सन् 347	20 वर्ष
50.	श्री बोधायन	गत कलि संवत् 3469 तुल्य ईसवी सन् 368	21 वर्ष
51.	श्री श्रीधर	गत कलि संवत् 3488 तुल्य ईसवी सन् 387	19 वर्ष
52.	श्री नारायण	गत कलि संवत् 3506 तुल्य ईसवी सन् 405	18 वर्ष
53.	श्री सदाशिव	गत कलि संवत् 3521 तुल्य ईसवी सन् 420	15 वर्ष
54.	श्री जयकृष्ण	गत कलि संवत् 3534 तुल्य ईसवी सन् 433	13 वर्ष
55.	श्री विरूपाक्ष	गत कलि संवत् 3545 तुल्य ईसवी सन् 444	11 वर्ष
56.	श्री विद्यारण्य	गत कलि संवत् 3552 तुल्य ईसवी सन् 451	07 वर्ष
57.	श्री विशेश्वर	गत कलि संवत् 3572 तुल्य ईसवी सन् 471	20 वर्ष
58.	श्री विबुधेश्वर	गत कलि संवत् 3595 तुल्य ईसवी सन् 494	23 वर्ष

	आचार्य का नाम	आचार्यत्व समापन वर्ष	पीठासीन काल लगभग
59.	श्री महेश्वर	गत कलि संवत् 3616 तुल्य ईसवी सन् 515	21 वर्ष
60.	श्री मधुसूदन	गत कलि संवत् 3635 तुल्य ईसवी सन् 534	19 वर्ष
61.	श्री रघूत्तम	गत कलि संवत् 3650 तुल्य ईसवी सन् 549	15 वर्ष
62.	श्री रामचन्द्र	गत कलि संवत् 3663 तुल्य ईसवी सन् 562	13 वर्ष
63.	श्री योगीन्द्र	गत कलि संवत् 3674 तुल्य ईसवी सन् 573	11 वर्ष
64.	श्री महेश्वर	गत कलि संवत् 3681 तुल्य ईसवी सन् 580	07 वर्ष
65.	श्री ओंकार	गत कलि संवत् 3708 तुल्य ईसवी सन् 607	27 वर्ष
66.	श्री नारायण	गत कलि संवत् 3730 तुल्य ईसवी सन् 629	22 वर्ष
67.	श्री जगन्नाथ	गत कलि संवत् 3751 तुल्य ईसवी सन् 650	21 वर्ष
68.	श्री श्रीधर	गत कलि संवत् 3770 तुल्य ईसवी सन् 669	19 वर्ष
69.	श्री रामचन्द्र	गत कलि संवत् 3783 तुल्य ईसवी सन् 682	13 वर्ष
70.	श्री ताम्राक्ष	गत कलि संवत् 3795 तुल्य ईसवी सन् 694	12 वर्ष
71.	श्री उग्रेश्वर	गत कलि संवत् 3810 तुल्य ईसवी सन् 709	15 वर्ष
72.	श्री उद्दण्ड	गत कलि संवत् 3828 तुल्य ईसवी सन् 727	18 वर्ष
73.	श्री संकर्षण	गत कलि संवत् 3850 तुल्य ईसवी सन् 749	22 वर्ष
74.	श्री जनार्दन	गत कलि संवत् 3871 तुल्य ईसवी सन् 770	21 वर्ष
75.	श्री अखण्डात्मा	गत कलि संवत् 3884 तुल्य ईसवी सन् 783	13 वर्ष
76.	श्री दामोदर	गत कलि संवत् 3896 तुल्य ईसवी सन् 795	12 वर्ष
77.	श्री शिवानन्द	गत कलि संवत् 3911 तुल्य ईसवी सन् 810	15 वर्ष
78.	श्री गदाधर	गत कलि संवत् 3929 तुल्य ईसवी सन् 828	18 वर्ष
79.	श्री विद्याधर	गत कलि संवत् 3951 तुल्य ईसवी सन् 850	22 वर्ष
80.	श्री वामन	गत कलि संवत् 3972 तुल्य ईसवी सन् 871	21 वर्ष
81.	श्री शङ्कर	गत कलि संवत् 3986 तुल्य ईसवी सन् 885	14 वर्ष
82.	श्री नीलकण्ठ	गत कलि संवत् 3997 तुल्य ईसवी सन् 896	11 वर्ष
83.	श्री रामकृष्ण	गत कलि संवत् 4017 तुल्य ईसवी सन् 916	20 वर्ष
84.	श्री रघूत्तम	गत कलि संवत् 4037 तुल्य ईसवी सन् 936	20 वर्ष
85.	श्री दामोदर	गत कलि संवत् 4047 तुल्य ईसवी सन् 946	10 वर्ष
86.	श्री गोपाल	गत कलि संवत् 4060 तुल्य ईसवी सन् 959	13 वर्ष
87.	श्री मृत्युञ्जय	गत कलि संवत् 4081 तुल्य ईसवी सन् 980	21 वर्ष
88.	श्री गोविन्द	गत कलि संवत् 4103 तुल्य ईसवी सन् 1002	22 वर्ष
89.	श्री वासुदेव	गत कलि संवत् 4115 तुल्य ईसवी सन् 1014	12 वर्ष
90.	श्री गङ्गाधर	गत कलि संवत् 4127 तुल्य ईसवी सन् 1026	12 वर्ष
91.	श्री सदाशिव	गत कलि संवत् 4148 तुल्य ईसवी सन् 1047	21 वर्ष

	आचार्य का नाम	आचार्यत्व समापन वर्ष	पीठासीन काल लगभग
92.	श्री वामदेव	गत कलि संवत् 4170 तुल्य ईसवी सन् 1069	22 वर्ष
93.	श्री उपमन्यु	गत कलि संवत् 4185 तुल्य ईसवी सन् 1084	15 वर्ष
94.	श्री हयग्रीव	गत कलि संवत् 4201 तुल्य ईसवी सन् 1100	16 वर्ष
95.	श्री हरि	गत कलि संवत् 4219 तुल्य ईसवी सन् 1118	18 वर्ष
96.	श्री रघूत्तम	गत कलि संवत् 4238 तुल्य ईसवी सन् 1137	19 वर्ष
97.	श्री पुण्डरीकाक्ष	गत कलि संवत् 4245 तुल्य ईसवी सन् 1144	07 वर्ष
98.	श्री पराशङ्करतीर्थ	गत कलि संवत् 4261 तुल्य ईसवी सन् 1160	16 वर्ष
99.	श्री वेदगर्भ	गत कलि संवत् 4279 तुल्य ईसवी सन् 1178	18 वर्ष
100.	श्री वेदान्तभास्कर	गत कलि संवत् 4299 तुल्य ईसवी सन् 1198	20 वर्ष
101.	श्री विज्ञानात्मा	गत कलि संवत् 4319 तुल्य ईसवी सन् 1218	20 वर्ष
102.	श्री शिवानन्द	गत कलि संवत् 4340 तुल्य ईसवी सन् 1239	21 वर्ष
103.	श्री महेश्वर	गत कलि संवत् 4360 तुल्य ईसवी सन् 1259	20 वर्ष
104.	श्री रामकृष्ण	गत कलि संवत् 4379 तुल्य ईसवी सन् 1278	19 वर्ष
105.	श्री वृषध्वज	गत कलि संवत् 4393 तुल्य ईसवी सन् 1292	14 वर्ष
106.	श्री शुद्धबोध	गत कलि संवत् 4406 तुल्य ईसवी सन् 1305	13 वर्ष
107.	श्री सोमेश्वर	गत कलि संवत् 4426 तुल्य ईसवी सन् 1325	20 वर्ष
108.	श्री गोपदेव	गत कलि संवत् 4447 तुल्य ईसवी सन् 1346	21 वर्ष
109.	श्री शंभुतीर्थ	गत कलि संवत् 4467 तुल्य ईसवी सन् 1366	20 वर्ष
110.	श्री भृगु	गत कलि संवत् 4480 तुल्य ईसवी सन् 1379	13 वर्ष
111.	श्री केशवानन्द	गत कलि संवत् 4492 तुल्य ईसवी सन् 1391	12 वर्ष
112.	श्री विद्यानन्द	गत कलि संवत् 4506 तुल्य ईसवी सन् 1405	14 वर्ष
113.	श्री वेदानन्द	गत कलि संवत् 4522 तुल्य ईसवी सन् 1421	16 वर्ष
114.	श्री बोधानन्द	गत कलि संवत् 4537 तुल्य ईसवी सन् 1436	15 वर्ष
115.	श्री सुतपानन्द	गत कलि संवत् 4561 तुल्य ईसवी सन् 1460	24 वर्ष
116.	श्री श्रीधर	गत कलि संवत् 4572 तुल्य ईसवी सन् 1471	11 वर्ष
117.	श्री जनार्दन	गत कलि संवत् 4593 तुल्य ईसवी सन् 1492	21 वर्ष
118.	श्री कामनाशनानन्द	गत कलि संवत् 4605 तुल्य ईसवी सन् 1504	12 वर्ष
119.	श्री हरिहरानन्द	गत कलि संवत् 4621 तुल्य ईसवी सन् 1520	16 वर्ष
120.	श्री गोपाल	गत कलि संवत् 4636 तुल्य ईसवी सन् 1535	15 वर्ष
121.	श्री कृष्णानन्द	गत कलि संवत् 4652 तुल्य ईसवी सन् 1551	16 वर्ष
122.	श्री माधवानन्द	गत कलि संवत् 4673 तुल्य ईसवी सन् 1572	21 वर्ष
123.	श्री मधुसूदन	गत कलि संवत् 4686 तुल्य ईसवी सन् 1585	13 वर्ष
124.	श्री गोविन्द	गत कलि संवत् 4702 तुल्य ईसवी सन् 1601	16 वर्ष

	आचार्य का नाम	आचार्यत्व समापन वर्ष	पीठासीन काल लगभग
125.	श्री रघूत्तम	गत कलि संवत् 4722 तुल्य ईसवी सन् 1621	20 वर्ष
126.	श्री वामदेव	गत कलि संवत् 4737 तुल्य ईसवी सन् 1636	15 वर्ष
127.	श्री हृषीकेश	गत कलि संवत् 4750 तुल्य ईसवी सन् 1649	13 वर्ष
128.	श्री दामोदर	गत कलि संवत् 4775 तुल्य ईसवी सन् 1674	25 वर्ष
129.	श्री गोपालानन्द	गत कलि संवत् 4787 तुल्य ईसवी सन् 1686	12 वर्ष
130.	श्री गोविन्द	गत कलि संवत् 4801 तुल्य ईसवी सन् 1700	14 वर्ष
131.	श्री रघुनाथ	गत कलि संवत् 4820 तुल्य ईसवी सन् 1719	19 वर्ष
132.	श्री रामचन्द्र	गत कलि संवत् 4841 तुल्य ईसवी सन् 1740	21 वर्ष
133.	श्री गोविन्द	गत कलि संवत् 4856 तुल्य ईसवी सन् 1755	15 वर्ष
134.	श्री रघुनाथ	गत कलि संवत् 4871 तुल्य ईसवी सन् 1770	15 वर्ष
135.	श्री रामकृष्ण	गत कलि संवत् 4892 तुल्य ईसवी सन् 1791	21 वर्ष
136.	श्री मधुसूदन	गत कलि संवत् 4905 तुल्य ईसवी सन् 1804	13 वर्ष
137.	श्री दामोदर	गत कलि संवत् 4928 तुल्य ईसवी सन् 1827	23 वर्ष
138.	श्री रघूत्तम	गत कलि संवत् 4950 तुल्य ईसवी सन् 1849	22 वर्ष
139.	श्री शिव	गत कलि संवत् 4971 तुल्य ईसवी सन् 1870	21 वर्ष
140.	श्री लोकनाथ	गत कलि संवत् 4984 तुल्य ईसवी सन् 1883	13 वर्ष
141.	श्री दामोदरतीर्थ	गत कलि संवत् 4999 तुल्य ईसवी सन् 1898	15 वर्ष
142.	श्री मधुसूदनतीर्थ	गत कलि संवत् 5027 तुल्य ईसवी सन् 1926	28 वर्ष
143.	श्री भारतीयकृष्णतीर्थ	गत कलि संवत् 5061 तुल्य ईसवी सन् 1960	34 वर्ष
144.	श्री निरंजनदेवतीर्थ	गत कलि संवत् 5093 तुल्य ईसवी सन् 1992	28 वर्ष
145.	श्री निश्चलानन्द सरस्वती		अब तक वर्तमान

टिप्पणी–

1. श्री भारती कृष्ण तीर्थ के ब्रह्मलीन होने के पश्चात् 30 जून 1964 तक शारदापीठ–द्वारका के 77वें आचार्य श्री अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ ब्रह्मलीन आचार्य की इच्छानुसार गोवर्द्धन–मठ को भी संभालते रहे। बाद में योग्य उत्तराधिकारी की खोज हो जाने पर तथा ब्रह्मलीन आचार्य के अन्तिम इच्छा पत्र के आधार पर उन्होंने 1 जुलाई 1964 ई० को इस पीठ पर श्री निरंजनदेवतीर्थ का अभिषेक कर दिया था।
2. अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु शङ्कराचार्य निश्चलानंद सरस्वती जी का अभिषेक ब्रह्मलीन निरंजनदेवतीर्थ के द्वारा 9 फरवरी 1992 ई० सन् में किया गया। तब से अब तक महाराज श्री इस पीठ को सुशोभित कर रहे हैं।

परिशिष्ट-5

ज्योतिष्पीठ-बदरिकाश्रम की आचार्य परम्परा

	आचार्य का नाम	कब तक	कितने वर्ष
1.	श्री तोटकाचार्य		
2.	श्री विजय		
3.	श्री कृष्ण		
4.	श्री कुमार		
5.	श्री गरुड़		
6.	श्री शुक		
7.	श्री विन्ध्य		
8.	श्री विशाल		
9.	श्री बकुल		
10.	श्री वामन		
11.	श्री सुन्दर		
12.	श्री अरुण		
13.	श्री निवास		
14.	श्री आनन्द (= सुखानन्द)		
15.	श्री विद्यानन्द		
16.	श्री शिव		
17.	श्री गिरि		
18.	श्री विद्याधर		
19.	श्री गुणानन्द		
20.	श्री नारायण		
21.	श्री उमापति		
22.	श्री बालकृष्ण स्वामी	विक्रम संवत् 1557 = ईसवी सन् 1500	57 वर्ष
23.	श्री हरिब्रह्म स्वामी	विक्रम संवत् 1558 = ईसवी सन् 1501	01 वर्ष
24.	श्री हरिस्मरण	विक्रम संवत् 1566 = ईसवी सन् 1509	08 वर्ष
25.	श्री वृन्दावन स्वामी	विक्रम संवत् 1568 = ईसवी सन् 1511	02 वर्ष

	आचार्य का नाम	कब तक	कितने वर्ष
26.	श्री अनन्त नारायण	विक्रम संवत् 1569 = ईसवी सन् 1512	01 वर्ष
27.	श्री भवानन्द	विक्रम संवत् 1583 = ईसवी सन् 1526	14 वर्ष
28.	श्री कृष्णानन्द स्वामी	विक्रम संवत् 1593 = ईसवी सन् 1536	10 वर्ष
29.	श्री हरिनारायण	विक्रम संवत् 1601 = ईसवी सन् 1544	08 वर्ष
30.	श्री ब्रह्मानन्द	विक्रम संवत् 1621 = ईसवी सन् 1564	20 वर्ष
31.	श्री देवानन्द	विक्रम संवत् 1636 = ईसवी सन् 1579	15 वर्ष
32.	श्री रघुनाथ	विक्रम संवत् 1661 = ईसवी सन् 1604	25 वर्ष
33.	श्री पूर्णदेव	विक्रम संवत् 1687 = ईसवी सन् 1630	26 वर्ष
34.	श्री कृष्णदेव	विक्रम संवत् 1696 = ईसवी सन् 1639	09 वर्ष
35.	श्री शिवानन्द	विक्रम संवत् 1703 = ईसवी सन् 1646	07 वर्ष
36.	श्री बालकृष्ण	विक्रम संवत् 1717 = ईसवी सन् 1660	14 वर्ष
37.	श्री नारायणउपेन्द्र	विक्रम संवत् 1750 = ईसवी सन् 1693	33 वर्ष
38.	श्री हरिश्चन्द्र	विक्रम संवत् 1763 = ईसवी सन् 1706	13 वर्ष
39.	श्री सदानन्द	विक्रम संवत् 1773 = ईसवी सन् 1716	10 वर्ष
40.	श्री केशवानन्द	विक्रम संवत् 1781 = ईसवी सन् 1724	08 वर्ष
41.	श्री नारायण तीर्थ	विक्रम संवत् 1823 = ईसवी सन् 1766	42 वर्ष
42.	श्री रामकृष्ण तीर्थ	विक्रम संवत् 1833 = ईसवी सन् 1776	10 वर्ष
43.	श्री टोकरानन्द		
44.	श्री पुरुषोत्तमानन्द		
45.	श्री कैलाशानन्द		
46.	श्री विश्वेश्वरानन्द		
47.	श्री अच्युतानन्द		
48.	श्री राजराजेश्वरानन्द	विक्रम संवत् 1959 = ईसवी सन् 1903	30 वर्ष
49.	श्री मधुसूदनानन्द	विक्रम संवत् 1967 = ईसवी सन् 1911	08 वर्ष
50.	श्री विजयानन्द	विक्रम संवत् 1995 = ईसवी सन् 1939	28 वर्ष
51.	श्री अद्वैतानन्द	गु. विक्रम संवत् 1997 = ईसवी सन् 1941	02 वर्ष
52.	श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती	विक्रम संवत् 2010 = ईसवी सन् 1953	12 वर्ष
53.	श्री कृष्णबोधाश्रम	विक्रम संवत् 2030 = ईसवी सन् 1973	20 वर्ष
54.	श्री स्वरूपानन्दसरस्वती		अब तक वर्तमान

टिप्पणी–

1. क्रमांक 43 से 51 तक के आचार्य ज्योतिर्मठ के स्थानापन्न मुख्यालय गुजरात प्रान्त के अहमदाबाद जनपद में अवस्थित धोलका मठ से अपने कृत्यों का निर्वहन करते रहे। इन आचार्यों का काल गुजराती विक्रम संवत् में दिया गया है । जो कि सामान्यतया वर्ष के सात महीनों तक भारत वर्ष के उत्तरी भाग में प्रयुक्त विक्रम संवत् से 1 संख्या कम पड़ता है।
2. श्री गुरुवंश पुराण (द्वितीय खण्ड) पृष्ठ 513-14 पर श्रीमद्दण्डी स्वामी शिवबोधाश्रम महाराज ने लिखा है कि ब्रह्मसूत्र–शाङ्करभाष्य को आनन्दगिरि, भामती तथा रत्न प्रभा टीकाओं सहित वेंकटेश्वर प्रेस से दो भागों में प्रकाशित किया गया था। इसके प्रथम भाग की भूमिका के 44वें पृष्ठ पर उल्लिखित ज्योतिर्मठ के शंकराचार्यों की विरुदावली में श्रीमद् अच्युतानन्द तथा श्री राजराजेश्वरानन्द का नाम प्राप्त होता है।
3. मन्त्र रहस्य ग्रन्थ के परिशिष्ट में 3 श्लोक ऐसे हैं जो बदरीनाथ क्षेत्र में अद्यावधि पढ़े जाते हैं ।

यथा–

तोटको विजयः कृष्णः कुमारो गरुड़ : शुकः।
विन्ध्यो विशालो वकुलो वामनः सुन्दरोऽरुणः ।। 1 ।।
श्री निवासः सुखानन्दो विद्यानन्दः शिवोगिरिः।
विद्याधरो गुणानन्दो नारायण उमापतिः ।। 2 ।।
एते ज्योतिर्मठाधीशाः आचार्यश्चिरजीविनः।
य एतान् संस्मरेन्नित्यं योगसिद्धिं स विन्दतिः ।। 3 ।।

उपर्युक्त श्लोकों से स्पष्ट होता है कि ज्योतिष्पीठ के प्रथम 21 आचार्य दीर्घ जीवी तथा महान् योगी थे जिनके स्मरण मात्र से योग सिद्धि हो जाती है । राजा सुधन्वा की ताम्रपत्र–विज्ञप्ति में भी कहा गया है कि योगिजनों की बहुलता वाले क्षेत्र ज्योतिष्पीठ पर आचार्य शङ्कर ने तोटक को अभिषिक्त किया जिससे कि योग के द्वारा धर्म की इस क्षेत्र में रक्षा की जा सके । ऐसी स्थिति में इन आचार्यों का जीवन काल लगभग 120 वर्ष निश्चित प्रतीत होता है । उक्त श्लोक 2 में 'सुखानन्दः' का पाठभेद 'स्वानन्दः' भी पाया जाता है ।

परिशिष्ट-6 (क)

श्री शृङ्गगिरि मठ की आचार्य परम्परा (अर्वाचीन)

(1966 ई० में प्रकाशित 'महान् तपस्वी' ग्रन्थ की सूची के अनुसार)

	आचार्य का नाम	कब तक	कितने वर्ष
1.	श्री सुरेश्वराचार्य		
2.	श्री नित्यबोधघनाचार्य	शा. सं. 770 = ई. सन् 848	75 वर्ष
3.	श्री ज्ञानघनाचार्य	शा. सं. 832 = ई. सन् 910	62 वर्ष
4.	श्री ज्ञानोत्तमाचार्य	शा. सं. 875 = ई. सन् 953	43 वर्ष
5.	श्री ज्ञानगिर्याचार्य	शा. सं. 960 = ई. सन् 1038	85 वर्ष
6.	श्री सिंहगिर्याचार्य	शा. सं. 1020 = ई. सन् 1098	60 वर्ष
7.	श्री ईश्वरतीर्थ	शा. सं. 1068 = ई. सन् 1146	48 वर्ष
8.	श्री नरसिंहतीर्थ	शा. सं. 1150 = ई. सन् 1228	82 वर्ष
9.	श्री विद्याशंकरतीर्थ	शा. सं. 1255 = ई. सन् 1333	105 वर्ष
10.	श्री भारतीकृष्णतीर्थ	शा. सं. 1302 = ई. सन् 1380	47 वर्ष
11.	श्री विद्यारण्य	शा. सं. 1308 = ई. सन् 1386	06 वर्ष
12.	श्री चन्द्रशेखर भारती (1)	शा. सं. 1311 = ई. सन् 1389	03 वर्ष
13.	श्री नरसिंह भारती (1)	शा. सं. 1330 = ई. सन् 1408	19 वर्ष
14.	श्री चन्द्रशेखरभारती (2)	मात्र कुछ दिन	00 वर्ष
15.	श्री पुरुषोत्तम भारती (1)	शा. सं. 1370 = ई. सन् 1448	40 वर्ष
16.	श्री शंकरानन्द भारती	शा. सं. 1376 = ई. सन् 1454	06 वर्ष
17.	श्री चन्द्रशेखर भारती (3)	शा. सं. 1386 = ई. सन् 1464	10 वर्ष
18.	श्री नरसिंह भारती (2)	शा. सं. 1401 = ई. सन् 1479	15 वर्ष
19.	श्री पुरुषोत्तम भारती (2)	शा. सं. 1439 = ई. सन् 1517	38 वर्ष
20.	श्री रामचन्द्र भारती	शा. सं. 1482 = ई. सन् 1560	43 वर्ष
21.	श्री नरसिंह भारती (3)	शा. सं. 1498 = ई. सन् 1576	16 वर्ष
22.	श्री नरसिंह भारती (4)	शा. सं. 1521 = ई. सन् 1599	23 वर्ष
23.	श्री अभिनव नरसिंह भारती (1)	शा. सं. 1544 = ई. सन् 1622	23 वर्ष
24.	श्री सच्चिदानन्द भारती (1)	शा. सं. 1585 = ई. सन् 1663	41 वर्ष

	आचार्य का नाम	कब तक	कितने वर्ष
25.	श्री नरसिंह भारती (5)	शा. सं. 1627 = ई. सन् 1705	42 वर्ष
26.	श्री सच्चिदानन्द भारती (2)	शा. सं. 1663 = ई. सन् 1741	36 वर्ष
27.	श्री अभिनवसच्चिदानन्द भारती (1)	शा. सं. 1689 = ई. सन् 1767	26 वर्ष
28.	श्री अभिनव नरसिंह भारती (2)	शा. सं. 1692 = ई. सन् 1770	03 वर्ष
29.	श्री सच्चिदानन्द	शा. सं. 1736 = ई. सन् 1814	44 वर्ष
30.	श्री अभिनव सच्चिदानन्द भारती (2)	शा. सं. 1739 = ई. सन् 1817	03 वर्ष
31.	श्री नरसिंह भारती (6)	शा. सं. 1801 = ई. सन् 1879	62 वर्ष
32.	श्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव नरसिंह भारती	शा. सं. 1834 = ई. सन् 1912	33 वर्ष
33.	श्री चन्द्रशेखर भारती (4)	शा. सं. 1876 = ई. सन् 1954	42 वर्ष
34.	श्री अभिनव विद्यातीर्थ	शा. सं. 1911 = ई. सन् 1989	35 वर्ष
35.	श्री भारती तीर्थ		वर्तमान

स्रोत :

1. **गुरु वंश काव्यम्**
2. **महान तपस्वी** (32वें आचार्य श्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव नरसिंह भारती की आन्ध्र = तेलगू भाषा में लिखित जीवनी)
   प्रकाशक – तल्लम सत्य नारायण जिस पर 34वें आचार्य श्री अभिनव विद्यातीर्थ का दिनांकित 15.5.66 का आशीर्वचन मुद्रित है ।
3. चल्ला लक्ष्मण शास्त्री–श्रृंगगिरि के शङ्कराचार्य के प्रतिनिधि से 1998 में प्राप्त सूचना ।

परिशिष्ट-6 (ख)

श्री शृङ्गगिरि पीठ की आचार्य परम्परा

मैसूर राज्य के पंडित धर्माधिकारी के तनुज श्री वेंकटाचल शर्मा द्वारा ईसवी सन् 1914 में विरचित श्रीमच्छङ्कराचार्यचरित्रम् नामक ग्रन्थ में प्रकाशित सूची के अनुसार–

	आचार्य का नाम	सिद्धिकाल	संन्यासकाल
1.	श्री सुरेश्वराचार्य	वि.सं. 695 माघ शुक्ल 12 संवत्सर प्रमाथी	जन्म काल से 725 वर्ष आयु
2.	श्री बोधघनाचार्य	शा. सं. 880 भाद्र शुक्ल 13 संवत्सर विभव	200 वर्ष
3.	श्री ज्ञानघनाचार्य	शा. सं. 832 आषाढ़ कृष्ण 5 संवत्सर प्रमोद	64 वर्ष
4.	श्रीज्ञानोत्तमशिवाचार्य	शा. सं. 875 फाल्गुन शुक्ल 8 संवत्सर प्रमादी	48 वर्ष
5.	श्री ज्ञानगिर्याचार्य	शा. सं. 960 श्रावण कृष्ण 10 संवत्सर बहुधान्य	89 वर्ष
6.	श्री सिंहगिर्याचार्य	शा. सं. 1020 वैशाख कृष्ण 8 संवत्सर बहुधान्य	62 वर्ष
7.	श्री ईश्वर तीर्थ	शा. सं. 1068 चैत्र शुक्ल 1 संवत्सर अक्षय	49 वर्ष
8.	श्री नरसिंह तीर्थ	शा. सं. 1150 फाल्गुन शुक्ल 6 संवत्सर सर्वधारी	83 वर्ष
9.	श्री विद्यातीर्थ (विद्याशङ्कर)	शा. सं. 1255 कार्तिक शुक्ल 7 संवत्सर श्रीमुख	105 वर्ष
10.	श्रीभारतीकृष्णतीर्थ	शा. सं. 1302 भाद्र शुक्ल 12 संवत्सर रौद्र	52 वर्ष
11.	श्री विद्यारण्य	शा. सं. 1308 चैत्र शुक्ल 13 संवत्सर अक्षय	55 वर्ष
12.	श्रीचन्द्रशेखरभारती	शा. सं. 1311 वैशाख कृष्ण 2 संवत्सर शुक्ल	21 वर्ष
13.	श्रीनरसिंहभारती	शा. सं. 1330 पौष शुक्ल 8 संवत्सर सर्वधारी	21 वर्ष
14.	श्रीपुरुषोत्तमभारती	शा. सं. 1370 श्रावण शुक्ल 11 संवत्सर विभव	42 वर्ष
15.	श्रीशंकरानन्दभारती	शा. सं. 1376 माघ शुक्ल 8 संवत्सर भाव	26 वर्ष
16.	श्रीचन्द्रशेखरभारती	शा. सं. 1386 मार्ग कृष्ण 5 संवत्सर तारण	15 वर्ष
17.	श्रीनरसिंहभारती	शा. सं. 1401 आषाढ़ कृष्ण 5 संवत्सर विकारी	15 वर्ष
18.	श्रीपुरुषोत्तमभारती	शा. सं. 1439 ज्येष्ठ कृष्ण 13 संवत्सर ईश्वर	45 वर्ष
19.	श्रीरामचन्द्रभारती	शा. सं. 1482 पौष कृ. 8 संवत्सर रौद्र	52 वर्ष
20.	श्री नरसिंहभारती	शा. सं. 1495 आषाढ़ कृष्ण 4 संवत्सर श्रीमुख	16 वर्ष
21.	श्री नरसिंहभारती	शा. सं. 1498 चैत्र शुक्ल 11 संवत्सर धाता	13 वर्ष

आचार्य का नाम	सिद्धिकाल	संन्यासकाल
22. श्री इम्मडि नरसिंहभारती	शा. सं. 1521 भाद्र कृष्ण 2 संवत्सर विकारी	23 वर्ष
23. श्री अभिनव नरसिंहभारती	शा. सं. 1544 फाल्गुन कृष्ण 7 संवत्सर दुन्दुभि	23 वर्ष
24. श्री सच्चिदानन्द भारती	शा. सं. 1585 आषाढ़ कृष्ण 5 संवत्सर शोभकृत्	41 वर्ष
25. श्री नरसिंहभारती	शा. सं. 1627 फाल्गुन कृष्ण 6 संवत्सर पार्थिव	42 वर्ष
26. श्री सच्चिदानन्द भारती	शा. सं. 1663 ज्येष्ठ शुक्ल 10 संवत्सर दुर्मति	36 वर्ष
27. श्री अभिनव सच्चिदानन्द	शा. सं. 1689 मार्ग शुक्ल 6 संवत्सर सर्वजित्	26 वर्ष
28. श्री नृसिंहभारती	शा. सं. 1692 फाल्गुन कृष्ण 5 या. भाद्र शुक्ल 11 संवत्सर विकृति	03 वर्ष
29. श्री सच्चिदानन्द भारती	शा. सं. 1735 अधि. भाद्र शुक्ल 1 संवत्सर भाव	43 वर्ष
30. श्री अभिनव सच्चिदानन्द	शा. सं. 1739 फाल्गुन कृष्ण 6 संवत्सर ईश्वर	04 वर्ष
31. श्री नरसिंहभारती	शा. सं. 1801 ज्येष्ठ शुक्ल 2 संवत्सर प्रमाथी	62 वर्ष
32. श्री सच्चिदानन्दशिवाभिनव विद्यानरसिंहभारती		
33. श्री चन्द्रशेखर भारती		

टिप्पणी :

1. श्री शङ्कराचार्यादि गुरु परम्परा ग्रन्थ में 'सुरेश्वराचार्य' के स्थान पर विश्वरूपाचार्य नाम प्राप्त होता है।
2. श्रीरंग से मुद्रापित श्रृंगेरीमठीय गुरुपरम्परा स्तोत्र में 'शंकरानन्द' के स्थान पर 'शंकर' नाम प्राप्त होता है।
3. मैसूर महाराजकृत अष्टोत्तरशताख्य ग्रन्थ में इम्मडिनरसिंह भारती का नाम नहीं है।

परिशिष्ट-6 (ग)

शृङ्गेरी मठ की आचार्य परम्परा

(गु०) विक्रम संवत् 1953 (= ई. स. 1897) में निर्णय सागर प्रेस बम्बई (सम्प्रति मुम्बई) से प्रकाशित पंचदशी की पीताम्बर कृत व्रजभाषा टीका की भूमिका में प्रकाशित सूची के अनुसार–

	आचार्य का नाम	आचार्यत्व समापन वर्ष	पीठासीन काल
1.	श्री पृथ्वीधराचार्य	शा. सं. 037 तुल्य ई. सन् 115	65 वर्ष
2.	श्री विश्वरूप भारती	शा. सं. 112 तुल्य ई. सन् 190	75 वर्ष
3.	श्री चिद्रूप भारती	शा. सं. 164 तुल्य ई. सन् 242	52 वर्ष
4.	श्री गंगाधर भारती	शा. सं. 234 तुल्य ई. सन् 312	70 वर्ष
5.	श्री चिद्घन भारती	शा. सं. 289 तुल्य ई. सन् 367	55 वर्ष
6.	श्री बोधज्ञ भारती	शा. सं. 335 तुल्य ई. सन् 413	46 वर्ष
7.	श्री ज्ञानोत्तम भारती	शा. सं. 380 तुल्य ई. सन् 458	45 वर्ष
8.	श्री शिवानन्द भारती	शा. सं. 420 तुल्य ई. सन् 498	40 वर्ष
9.	श्री ज्ञानोत्तम भारती	शा. सं. 457 तुल्य ई. सन् 535	37 वर्ष
10.	श्री नृसिंह भारती	शा. सं. 498 तुल्य ई. सन् 573	41 वर्ष
11.	श्री ईश्वर भारती	शा. सं. 528 तुल्य ई. सन् 606	30 वर्ष
12.	श्री नृसिंह भारती	शा. सं. 550 तुल्य ई. सन् 628	22 वर्ष
13.	श्री विद्याशंकर भारती	शा. सं. 578 तुल्य ई. सन् 656	28 वर्ष
14.	श्री कृष्ण भारती	शा. सं. 598 तुल्य ई. सन् 676	20 वर्ष
15.	श्री शंकर भारती	शा. सं. 620 तुल्य ई. सन् 698	22 वर्ष
16.	श्री चन्द्रशेखर भारती	शा. सं. 644 तुल्य ई. सन् 722	24 वर्ष
17.	श्री चिदानन्द भारती	शा. सं. 667 तुल्य ई. सन् 745	23 वर्ष
18.	श्री ब्रह्मानन्द भारती	शा. सं. 695 तुल्य ई. सन् 773	28 वर्ष
19.	श्री चिद्रू भारती	शा. सं. 720 तुल्य ई. सन् 798	25 वर्ष
20.	श्री पुरुषोत्तम भारती	शा. सं. 755 तुल्य ई. सन् 833	35 वर्ष
21.	श्री मधुसूदन भारती	शा. सं. 793 तुल्य ई. सन् 871	38 वर्ष
22.	श्री जगन्नाथ भारती	शा. सं. 821 तुल्य ई. सन् 899	28 वर्ष
23.	श्री विश्वानन्द भारती	शा. सं. 853 तुल्य ई. सन् 931	32 वर्ष
24.	श्री विमलानन्द भारती	शा. सं. 888 तुल्य ई. सन् 966	35 वर्ष

	आचार्य का नाम	आचार्यत्व समापन वर्ष	पीठासीन काल
25.	श्री विद्यारण्य भारती	शा. सं. 0928 तुल्य ई. सन् 1006	40 वर्ष
26.	श्री विश्वरूप भारती	शा. सं. 0948 तुल्य ई. सन् 1026	20 वर्ष
27.	श्री बोधज्ञ भारती	शा. सं. 0974 तुल्य ई. सन् 1052	26 वर्ष
28.	श्री ज्ञानोत्तम भारती	शा. सं. 1004 तुल्य ई. सन् 1082	30 वर्ष
29.	श्री ईश्वर भारती	शा. सं. 1054 तुल्य ई. सन् 1132	50 वर्ष
30.	श्री भारती तीर्थ	शा. सं. 1089 तुल्य ई. सन् 1167	35 वर्ष
31.	श्री विद्यातीर्थ	शा. सं. 1127 तुल्य ई. सन् 1205	38 वर्ष
32.	श्री विद्यारण्य भारती	शा. सं. 1169 तुल्य ई. सन् 1247	42 वर्ष
33.	श्री नृसिंह भारती	शा. सं. 1197 तुल्य ई. सन् 1275	28 वर्ष
34.	श्री चन्द्रशेखर भारती	शा. सं. 1225 तुल्य ई. सन् 1303	28 वर्ष
35.	श्री मधुसूदन भारती	शा. सं. 1255 तुल्य ई. सन् 1333	30 वर्ष
36.	श्री विष्णु भारती	शा. सं. 1290 तुल्य ई. सन् 1368	35 वर्ष
37.	श्री गंगाधर भारती	शा. सं. 1324 तुल्य ई. सन् 1402	34 वर्ष
38.	श्री नृसिंह भारती	शा. सं. 1355 तुल्य ई. सन् 1433	31 वर्ष
39.	श्री शंकर भारती	शा. सं. 1388 तुल्य ई. सन् 1466	33 वर्ष
40.	श्री पुरुषोत्तम भारती	शा. सं. 1432 तुल्य ई. सन् 1510	44 वर्ष
41.	श्री रामचन्द्र भारती	शा. सं. 1466 तुल्य ई. सन् 1544	34 वर्ष
42.	श्री नृसिंह भारती	शा. सं. 1509 तुल्य ई. सन् 1587	43 वर्ष
43.	श्री विद्यारण्य भारती	शा. सं. 1542 तुल्य ई. सन् 1620	33 वर्ष
44.	श्री नृसिंह भारती	शा. सं. 1561 तुल्य ई. सन् 1639	19 वर्ष
45.	श्री शंकर भारती	शा. सं. 1585 तुल्य ई. सन् 1663	24 वर्ष
46.	श्री नृसिंह भारती	शा. सं. 1601 तुल्य ई. सन् 1679	16 वर्ष
47.	श्री शंकर भारती	शा. सं. 1629 तुल्य ई. सन् 1707	28 वर्ष
48.	श्री नृसिंह भारती	शा. सं. 1653 तुल्य ई. सन् 1731	24 वर्ष
49.	श्री शंकर भारती	शा. सं. 1685 तुल्य ई. सन् 1763	32 वर्ष
50.	श्री नृसिंह भारती	शा. सं. 1691 तुल्य ई. सन् 1769	06 वर्ष
51.	श्री शंकर भारती	शा. सं. 1729 तुल्य ई. सन् 1807	38 वर्ष
52.	श्री नृसिंह भारती	शा. सं. 1742 तुल्य ई. सन् 1820	13 वर्ष
53.	श्री शंकर भारती	शा. सं. 1776 तुल्य ई. सन् 1854	34 वर्ष
54.	श्री नृसिंह भारती	शा. सं. 1782 तुल्य ई. सन् 1860	06 वर्ष
55.	श्री शंकर भारती		

परिशिष्ट-7

अमिट कालरेखा (अर्वाचीन मत खण्डन) पर विद्वानों के मतों से सम्बन्धित पत्राचार

।। श्रीहरिः ।।

।। श्रीगणेशायनमः ।।

दिनाङ्क : 14 सितम्बर 2000

पूर्वाम्नाय-गोवर्द्धनमठ-पुरीपीठाधीश्वर
श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य स्वामि
श्री निश्चलानन्द सरस्वती जी महाराज की

'अमिट कालरेखा' पर रस-रहस्यपूर्ण सम्मति

शिवावतार भगवत्पाद् आद्यशंकराचार्य महाभाग के अवतार से नित्या सरस्वती 'वेदवाणी स्वार्थ (वास्तविक तात्पर्य) में सर्वतोभावेन समन्वित हुई।

भगवत्पादशंकराचार्यमहाभाग ने वैदिक कर्मकाण्ड से लौकिक पारलौकिक उत्कर्ष का ख्यापनकर तथा कर्माशक्ति, फलाशक्ति, अहंकृति को शिथिल कर धृत्युत्साहपूर्वक भगवदर्थ अनुष्ठित स्ववर्णाश्रमानुरूप कर्मानुष्ठानरूप कर्मयोग से कैवल्योपयुक्त चित्तशुद्धि का प्रतिपादन कर अस्सी प्रतिशत वेद मन्त्रों को स्वार्थ में समन्वित किया।

जगत् के अभिन्ननिमित्तोपादानकारण मायाशक्तिसमन्वित सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर का विष्णु, शिवादि पञ्चदेवों के रूप में अवतार स्वीकार कर तथा पञ्चदेवोपासना से कैवल्योपयुक्त चित्तस्थैर्य का प्रतिपादन कर सोलह प्रतिशत वेद मन्त्रों को भगवत्पाद ने स्वार्थ में समन्वित किया।

शिव स्वरूप श्री भगवत्पाद ने आत्मा की सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्मरूपता और अद्वयता का प्रतिपादन कर तथा आत्मस्वरूप में अध्यस्त अनात्मवस्तुओं से विविक्त ब्रह्मात्मतत्व के अवशेष को मुक्ति स्वीकार कर अवशिष्ट चार प्रतिशत ज्ञानकाण्ड परक वेदमन्त्रों को स्वार्थ में समन्वित किया।

ऐसे भगवत्पादमहाभाग का आविर्भाव वि. सं. 2057, तदनुसार ई. सन् 2000 से 2507 वर्ष पूर्व अर्थात् वि.सं. से 450 और ई. सन् से 507 वर्ष पूर्व प्रामाणिक गवेषणा से सिद्ध है।

श्री परमेश्वरनाथ मिश्रविरचित 'अमिट कालरेखा' प्रथम और द्वितीय भाग का आद्योपान्त अनुशीलन कर अतीव प्रमुदित हुआ। ऐतिह्यतथ्यापहारक विचारकों के भ्रम, प्रमादादियुक्त पक्ष का श्री मिश्र महोदय ने वस्तुस्थिति के प्रकाश में विनम्रता, बुद्धिमत्ता, युक्तिमत्ता और सत्य सहिष्णुता एवं सत्यनिष्ठा के साथ निराकरण कर वस्तुस्थिति में आस्थान्वित महानुभावों को अपूर्व उत्साह और बल प्रदान किया है। भगवत्पाद विरचित भाष्यान्तर्गत गुम्फित 'कार्षापण मुद्रा', विद्वान् मनीषियों एवं राजाओं के तथा नगरों के नामादि के आधार पर प्रामाणिक दृष्टिकोण प्रस्तुत कर श्री मिश्र जी ने सत्य के पक्षधर, सिद्धान्तनिष्ठ महानुभावों का स्वयं को स्नेह भाजन और अनुग्रहपात्र बना लिया। भगवान् श्री जगन्नाथ-चन्द्रमौलीश्वर महाप्रभु की अनुकम्पा से श्री मिश्र जी का सर्वविध उत्कर्ष हो, ऐसी भावना है।

निश्चलानन्द सरस्वती

●

आचार्य डॉ. जयमन्त मिश्र
एम. ए., पी-एच. डी.,
व्याकरण-साहित्याचार्य, राष्ट्रपति पुरस्कार सम्मानित,
पूर्व कुलपति, कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय,
पूर्व वरीय विश्वविद्यालय-आचार्य एवम् अध्यक्ष
संस्कृत विभाग, बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

दूरभाष : (06272) 22946
हनुमानगंज, मिश्रटोला
दरभंगा–846004
दिनांक–29.1.2001

प्राचीन इतिहास के वेत्ता एवम् उच्चन्यायालय, कलकत्ता तथा उच्चतम न्यायालय भारत के प्रसिद्ध अधिवक्ता श्री परमेश्वर नाथ मिश्र लिखित 'अमिट कालरेखा' जिसमें आदि भगवत्पाद् श्री शंकराचार्य के समय का प्रामाणिक निरूपण किया गया है, अन्वर्थ संज्ञक एक महत्वपूर्ण कृति है। विज्ञ लेखक द्वारा इस पुस्तक में उद्धृत राजा सुधन्वा के अभिलेख से प्रमाणित होता है कि आदि शंकराचार्य ने गोवर्द्धनपीठ पुरी में श्री पद्मपादाचार्य, ज्योतिष्पीठ-बदरिकाश्रम में श्री तोटकाचार्य,

शारदापीठ-द्वारका में श्री सुरेश्वराचार्य तथा शृङ्गेरीपीठ में श्री हस्तामलकाचार्य को अभिषिक्त कर चारों धर्म-राजधानियों की सुव्यवस्था तथा धर्म, संस्कृति की सुरक्षा का दायित्व उन्हें दिया था। उनके जीवनकाल में राजा सुधन्वा ने, निर्देशानुसार, अपने विस्तृत अभिलेख को उत्कीर्ण करवाकर आश्विन शुक्ल 15, युधिष्ठिर शक 2663 (तुल्य) ई. पू. 475 में स्थापित किया था। इसी वर्ष ई. पू. 475 में अपने जीवन के 32 वर्ष में आदि शंकराचार्य ने कैलाश गमन किया था। तदनुसार आदि शंकराचार्य का आविर्भाव युधिष्ठिर शक 2631 (तुल्य) ई. पू. 507 में हुआ था यह सिद्ध होता है।

विद्वान् लेखक ने इस प्रसङ्ग में धर्मकीर्ति, दिङ्नाग आदि के वचनों के आधार पर उठायी गई विसङ्गतियों का निर्णयात्मक समाधान कर उपर्युक्त मत को प्रमाणित किया है।

शृङ्गेरीमठ के अपुष्टमत के अनुसार आदि शंकराचार्य का आविर्भाव ई. 8वीं शती में मानने पर गोवर्द्धनपीठ, शारदापीठ और ज्योतिष्पीठ के आचार्यों की परम्परा से प्राप्त (आचार्यों की) सूची में संख्या तथा निर्दिष्ट समय की भी संगति नहीं होती है। गोवर्द्धनपीठ-पुरी में अभी जगद्गुरु शंकराचार्य श्री निश्चलानन्द सरस्वती 145वें आचार्य हैं। पूर्ववर्ती 144 आचार्यों के आचार्यत्वकाल का योग भी इसी से मेल खाता है। ऐसे ही शारदापीठ-द्वारका के वर्तमान पीठाधीश्वर श्री स्वरूपानन्द सरस्वती के पूर्ववर्ती 77 आचार्यों के सुदीर्घकाल का योग भी संगत होता है। गोवर्द्धनपीठ के पूर्वाचार्यों का समय (गत) कलि संवत् में तथा शारदापीठ के पूर्वाचार्यों का समय युधिष्ठिर संवत् में उल्लिखित है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के वैकुण्ठधामगमन के दिन से कलिसंवत् का और युधिष्ठिर के राज्यारोहण के समय से युधिष्ठिर संवत् का आरम्भ होता है। दोनों में तुलनात्मक विवेचन से भी उपर्युक्त मत ही पुष्ट होता है।

अतः अनेक अकाट्य-प्रमाणों के आधार पर आदि शङ्कराचार्य का आविर्भाव ई. पू. 507 तथा कैलाशगमन ई. पू. 475 में हुआ था यही सुनिश्चित होता है।

श्री परमेश्वर नाथ मिश्र ने अथक परिश्रम कर इस विवादास्पद विषय का युक्ति पूर्वक सप्रमाण खण्डन करते हुए निर्णयात्मक मान्य समय को सिद्ध किया है। एतदर्थ इन्हें शतशः हार्दिक साधुवाद। इतिशम्।

वसन्त पञ्चमी

29.1.2001

जयमन्त मिश्र

प्रो. जगदीश प्रसाद
विभागाध्यक्ष-हिन्दी विभाग

स्काटिश चर्च कालेज
कोलकाता–6
दूरभाष : 3503862

माननीय परमेश्वरनाथ मिश्र जी,
सादर नमस्कार।

'शंकराचार्य परम्परा एवं संस्कृति रक्षक परिषद्' के द्वारा प्रकाशित आपका ग्रन्थ 'अमिट कालरेखा' देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कलेवर में लघु होते हुए भी यह ग्रन्थ आचार्य शंकर के प्रादुर्भाव काल के सम्बन्ध में फैली भ्रान्ति को निर्मूल करने में सफल हुआ है।

भारतवर्ष की महान् सांस्कृतिक विरासत को नकारने की विदेशी मनोवृत्ति का ही परिणाम है कि आज के विद्वान् 8वीं शताब्दी को आदिशंकराचार्य का प्रादुर्भाव काल मानते हैं। ऐतिहासिक विवरणों एवं बौद्ध साहित्य में उपलब्ध अनेक साक्ष्यों के आधार पर यह निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है कि इस धरा धाम पर उनका प्रकटीकरण युधिष्ठिर शक संवत 2631 में हुआ था।

इस प्रसंग में आपका यह ग्रन्थ विद्वानों के लिए पथ प्रदर्शक सिद्ध होगा। मेरा दृढ़ विश्वास है कि विपुल तथ्यों से सुसज्जित यह ग्रन्थ वर्तमान एवं आगामी पीढ़ी के लिये प्रकाश स्तंभ का कार्य करेगा। इसी शृंखला में प्रकाशित होने वाली आगामी पुस्तक की प्रतीक्षा में–

अनेक शुभकामनाओं के साथ सादर

आपका
जगदीश प्रसाद

●

।। श्री हरिः ।।

कल्याण

सम्पादन-विभाग गीता प्रेस – 273005
पत्र-क्रमांक 1910

गोरखपुर (उ. प्र.)
दिनांक 19.5.2000

सम्मान्य महोदय,

सादर हरिस्मरण।

पत्र के लिये धन्यवाद। आप द्वारा प्रेषित पुस्तक 'अमिट कालरेखा' प्राप्त हुई। आपने आचार्य शंकर के जीवन पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला है। इस पुस्तक के द्वारा चारों मठों के बारे में समस्त जानकारी पाठकगण प्राप्त कर सकेंगे। अतः आपके इस पुस्तक को पाठकों के लाभार्थ पुस्तकालय में जमा कर लिया गया है। पुस्तक का पेपर, गेट-अप, छपाई उत्तम है। कृपाभाव बनाये रखें।

शेष भगवत् कृपा

भवदीय
जानकी नाथ शर्मा

ॐ

(मूल आङ्ग्ल का हिन्दी भाषान्तर)

डॉ०. एम. टी. बुच, एम.ए., पी.एच-डी.

पो. बॉ. संख्या 3002
पटेल कालोनी पोस्ट ऑफिस,
जामनगर - 361004,
दिनांक 20.12.2000

प्रिय महोदय,

आपको यह विदित हो कि हमने 'अमिट कालरेखा' नामक आपकी बहुमूल्य पुस्तक को पढ़ा तथा उसका परीक्षण किया। इस सशक्त विश्वासोत्पादक शोध प्रबन्ध हेतु आप हार्दिक बधाई के पात्र हैं। इसके प्रमाण एवं युक्तियाँ अकाट्य हैं और यही सच्चाई है।

इस सम्बन्ध में हम आपसे अनुरोध करते हैं कि गुजराती सहित भारत की मुख्य क्षेत्रीय भाषाओं में अमिट कालरेखा का अनुवाद करवाकर उसका व्यापक पैमाने पर प्रसार प्रचार करें।

वस्तुतः हमारा यह सोचना है कि इस तरह की विलक्षण पुस्तक उन लोगों के लिये जो कि हिन्दी भाषा नहीं जानते किन्तु आदि गुरु में जिनकी अगाधश्रद्धा है अनजान व अपाठ्य नहीं बनी रहनी चाहिए। यदि आप हमसे कहें तो हम विशुद्ध सम्मानार्थ आधार पर इसका गुजराती भाषा में सहर्ष अनुवाद प्रस्तुत करेंगे।

आपका शुभेच्छु
एम. टी. बुच

●

(मूल आङ्गल का हिन्दी भाषान्तर)

डॉ. सी. बी. रावल
पूर्व प्राध्यापक-दर्शन शास्त्र विभाग
सेंट जेवियर्स कालेज,
नवरंग पुरा, अहमदाबाद, गुजरात

28, नोवेक्स से हाउसेज सैटेलाइट रोड
अहमदाबाद–15
दिनांक 6.6.2000

प्रिय महाशय,

श्री मिश्र जी द्वारा विरचित पुस्तक सम्प्रेषण हेतु मैं आपके प्रति अत्यधिक कृतज्ञ हूँ। मैं लेखक को गहन ज्ञान व शोधी मस्तिष्क हेतु बधाई देता हूँ जिसका उपयोग उन्होंने परम्परा और इतिहास द्वारा पूर्णतया समर्थित नई अवधारणा को प्रकाश में लाने तथा अनेक छिपे हुये तथ्यों के उद्‌घाटन एवम् अन्वेषण में किया है। मत वैभिन्य हो सकता है परन्तु ज्ञान वैभिन्य नहीं होना चाहिए।

आपका शुभेच्छु
सी. बी. रावल

ॐ श्री सद्गुरुदेवाय नमः

दूरभाष : 540805 दिनांक : 16.10.2000

प्रोफेसर (डॉ.) के. जे. अजाविया
एम. ए., पी-एच. डी.
60, श्री सद्गुरु नगर, निवृत्त संकाय प्राध्यापक और
पूर्व चेयर मैन संस्कृत बोर्ड सौ. यूनिवर्सिटी
सारु सेक्शन रोड, जामनगर–361006

सन्मान्य महोदय,

'अमिट कालरेखा' पुस्तक मिली। आपने मुझे अधिकृत मानकर याद किया और अपना संशोधन भेजा इसलिए कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

पश्चिमीय विद्वानों का असर भारतीय विद्वत् जगत पर गहरा है। अतः वे भी जगद्गुरु की तिथि 8वीं शताब्दी मानते हैं। किन्तु आपने ठोस प्रबल प्रमाणों से जो प्रतिपादित किया है वह उत्कृष्ट संस्कृत साहित्य के इतिहास में क्रान्ति लाएगा। आपके प्रमाण और तर्क वस्तुनिष्ठ होने से अकाट्य ठहरेंगे। मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। धन्यवाद। आपका प्रदान अविरत बना रहे इसी शुभकामना के साथ।

भवदीय

के. जे. अजाबिया

●

डॉ. रमेशचन्द्र मुरारी
व्याख्याता–संस्कृति अकादमी द्वारका
द्वारका–361335, गुजरात

अगस्त, 1.2000

आदरणीय मिश्र जी

सादर प्रणाम,

आप द्वारा प्रेषित एवं प्रकाशित अमिट कालरेखा का अवलोकन किया। अपनी धैर्यशाली बुद्धि-बल का परिचय देकर आपने सभी को चौंका दिया।

यह ग्रन्थ शङ्कराचार्यों की परम्परा को बताने के लिए आधुनिकों के मुँह पर तमाचा मार रहा है।

''गागर में सागर'' भरने की जो उक्ति है वह इस अमिट कालरेखा के अमूल्य पृष्ठों में निहित है। हम सभी की राय आपके मुताबिक है।

बाकी मैं आपको क्या लिख सकता हूँ।

अस्तु–हमारा प्रणाम!

डॉ. रमेशचन्द्र मुरारी

डॉ. कमलेश कुमार सी. चोकसी
रीडर–संस्कृत विभाग, भाषाई संकाय
गुजरात विश्वविद्यालय,
अहमदाबाद–380009, भारत

दिनांक : 21.6.2000

मान्यवर महोदय,

सादर प्रणाम,

आशा है आप सकुशल होंगे। भवविरचित 'अमिट कालरेखा' नामक पुस्तकरत्न प्राप्त हुआ। तदर्थ धन्यवाद।

आपने तर्कबद्ध रूप से बहुत श्रम पूर्वक यह पुस्तक तैयार किया है; वह प्रशंसनीय है। एतद्विषयक सभी चिन्तकों तथा अध्ययनकर्ताओं को यह उपयोगी सिद्ध होगा।

भारतीय प्राचीन अन्य महात्माओं तथा राजाओं के क्रमिक कालबद्ध इतिहास का कार्य भी इसी शैली से हो, तो बड़ा उपयोगी हो।

शेष कुशल है।

भवदीय
कमलेश कुमार सी. चोकसी

●

(मूल आङ्ग्ल का हिन्दी भाषान्तर)

डॉ. नितिन एस. व्यास
अध्यक्ष दर्शनशास्त्र विभाग
कला संकाय
महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा

दूरभाष : 329334
बड़ौदा कालेज भवन
बड़ौदा–2

दिनांक : 25.5.2000

माननीय श्री मिश्र जी

कल मुझे आपकी पुस्तक अमिट कालरेखा (आचार्य शङ्कर की प्रव्रज्या के 2500 वर्ष अर्वाचीन मत खण्डन : काल गणना) प्राप्त हुई। आपके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। मैं धीरे-धीरे इसे पढ़ूँगा।

आपका व्यस्त कार्यक्रम है इस तथ्य के बावजूद भी इतिहास में विलक्षण तिथिक्रमोत्पत्ति में आपकी अभिरूचि आश्चर्यजनक है।

शुभकामनाओं और सम्मान सहित।

आपका शुभेच्छु
एन. एस. व्यास

संस्कृत सेवा समिति

प्रमुख
पंजीकरण संख्या गुज./823
न्यास संख्या एफ 833

दूरभाष : 479610
गौतम वाडीलाल पटेल
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
सेंट जेवियर कालेज, अहमदाबाद–380009

माननीय परमेश्वरनाथ मिश्र

सादर नमस्कार,

आपके द्वारा लिखित अमिट कालरेखा प्राप्त हुआ। धन्यवाद।

आपका संस्कृति संरक्षण का प्रयत्न धन्यवाद का पात्र है। मैं अवश्य पुस्तक पढ़ूँगा। और इस मत का प्रचार-प्रसार भी करूँगा।

पुनः सधन्यवाद !

भवदीय कृपाकांक्षी

गौतम वाडीलाल पटेल

टिप्पणी : यह पत्र दीखने में बहुत संक्षिप्त है पर इसका महत्व अत्यधिक है। श्री पटेल जी गुजरात सरकार के सूचना निदेशालय द्वारा 1992 ई. सन् में प्रकाशित 'आदिशङ्कराचार्य (ट्वेल्थ सेन्चुरी कमेमोरेशन वाल्यूम)' अर्थात् 'आदिशङ्कराचार्य (द्वादश शताब्दी स्मृतिग्रन्थ)' के सम्पादक थे। बाद में 1995 ई. सन् में उक्त ग्रन्थ का संशोधित एवं परिवर्द्धित गुजराती अनुवाद 'आदिशङ्कराचार्य (द्वादश शताब्दी स्मृतिग्रन्थ)' शीर्षक से संस्कृत सेवा समिति द्वारा प्रकाशित किया गया था। जिसके संयुक्त संपादक श्री पटेल जी भी थे। उन्होंने मेरे द्वारा पुष्ट पारम्परिक मत आचार्य शङ्कर के आविर्भाव काल ई. पू. 507 से ई. पू. 475 के प्रचार-प्रसार करने की प्रतिबद्धता प्रदर्शित कर विद्वानों की परम्परागत उच्च मर्यादा का प्रदर्शन कर लेखक को अनुगृहीत किया है। क्योंकि विद्वान् सत्य पक्ष उजागर होने पर असत्य पक्ष का त्याग कर देता है। डॉ. गौतम वा. पटेल जी ने भी असत्य मत 'आचार्य के आविर्भाव काल 788 ई. से 820 ई.' को त्याग कर सत्य मत 'आचार्य के आविर्भावकाल ई. पू. 507 ई. से ई. पू. 475' को अपनाकर भारतीय संस्कृति एवं शाङ्कर सम्प्रदाय की अमूल्य सेवा की है जो इतिहास में स्वर्णक्षरों में अंकित रहेगा।

आचार्य पं. झम्मन मिश्र
व्याख्यान दिवाकर

श्रीः

पता
इन्द्रप्रस्थ भवन
सुभाष वार्ड, भाटापारा
जिला–रायपुर

पत्रांक 121

दिनांक 5 जुलाई 2000

परम सम्मानीय श्री मिश्र जी
सादर अभिवादन

विदितस्तु,

आपके द्वारा प्रेषित आद्य शङ्कराचार्य भगवान् का आविर्भाव काल "अमिट कालरेखा" शोधपूर्ण प्रकाशित महाग्रन्थ को पढ़कर हार्दिक प्रसन्नता हुयी वर्तमान् समय में ऐसे प्रामाणिक ग्रन्थों की आवश्यकता थी। आपके महान् सत्प्रयास एवं कठिन परिश्रम के द्वारा यह ऐतिहासिक कार्य पूर्ण हुआ है जो इतिहास में सदैव स्मरणीय रहेगा। आपने सांगोपांग विस्तृत विवेचन के द्वारा शास्त्रीय एवं ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर भगवान् आदिशङ्कराचार्य जी का आविर्भाव काल 2507 वर्ष पूर्व सिद्ध किया है जो युक्तियुक्त बहुत स्पष्ट है। और अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं हम पूर्णरूपेण आपके विचारों से सहमत हैं। अर्वाचीन मत का जिस दृढ़ता पूर्वक आपने खण्डन किया है, उससे राष्ट्र में जो इस संदर्भ में भ्रान्तियाँ फैलाये हुए हैं उनको पूरा यथोचित समाधान प्राप्त होगा। भविष्य में आपके द्वारा "**सनातनधर्म**" के किसी भी विषय पर विरोधी यदि कटाक्ष करें तो आपके सत् ज्ञान प्रकाश के द्वारा उसका उन्मूलन हो ऐसी हमारी भावना है। अन्त में भगवान् भी चन्द्रमौलीश्वर महाप्रभु के पादपङ्कजों में कोटिशः प्रणाम समर्पित करते हुए हम प्रार्थना करते हैं कि विस्तृत महाग्रन्थ का भी शीघ्र प्रकाशन हो। आपको पूर्ण शक्ति प्राप्त हो इन्हीं शुभ मंगलकामनाओं सहित।

आपका ही
झम्मन शास्त्री

(मूल आङ्ग्ल का हिन्दी भाषान्तर)

प्रो. डॉ. एस. जी. कान्तावाला
पूर्व प्रोफेसर व अध्यक्ष
संस्कृत, पालि, प्राकृत विभाग
पूर्वसंकायाध्यक्ष-कलासंकाय
पूर्व निदेशक–पौर्वात्य संस्थान
म. स. विश्वविद्यालय, बड़ौदा
बड़ोदरा–390002

"श्रीराम"
कन्तरेश्वर महादेव का पोल
बजवाड़ा, बड़ोदरा–390001
गुजरात
दिनांक : 2 जून 2000

प्रिय श्री मिश्र,

आपकी पुस्तक "अमिट कालरेखा" की शुभेच्छित प्रति प्राप्त हुयी तदर्थ धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। पुस्तक पढ़ने में रुचिकर है और आप बधाई के पात्र हैं। एतस्मिन् पश्चात् ऊपर दिये गये मेरे आवासीय पते पर पत्राचार करें।

सधन्यवाद,

आपका शुभेच्छु
एस. जी. कान्तावाला

●

राम गोपाल
सेक्रेटरी
हिन्दू राइटर्स फोरम

ए-2-बी / 94-ए, एम. आई. जी. फ्लैट
पश्चिम विहार, नई दिल्ली–110063
दिनांक : 31.3.2001

आदरणीय मिश्र जी

सादर प्रणाम,

आपकी पुस्तक 'अमिट कालरेखा' आचार्य शङ्कर की प्रव्रज्या के पच्चीस सौ वर्ष (अर्वाचीन मत का खण्डन) हाल ही में एक भक्त के पास देखी। उन्हें यह पुस्तक जनवरी 2001 में प्रयास महाकुम्भ के अवसर पर प्राप्त हुयी थी।

अल्पकाल में जो थोड़ा बहुत पढ़ पाया उससे मैं इस पुस्तक द्वारा बहुत प्रभावित हुआ। आपने इस विषय में सार्थक, शोधपूर्ण परिश्रम किया है। यदि आप इसे डाक द्वारा उपरोक्त पते पर भिजवा सकें तो कृपा होगी।

अग्रिम धन्यवाद सहित,

आपका
राम गोपाल

सम्मान्य मिश्र जी!

सप्रेम हरिस्मरण

आपके द्वारा प्रणीत अमिट कालरेखा के दोनों भागों को आद्योपान्त पढ़ा। आपने वस्तुनिष्ठ एवं अकाट्य पुष्ट प्रमाणों से आद्यशंकराचार्य का प्राकट्य ई. पू. 507 एवं कैलाशगमन ई. पू. 475 सुनिश्चित किया है। जो सत्य है। मैं आपके इस सद्प्रयास के लिए साधुवाद देती हूँ। आपने तमाम महामोह असुररूपी वितण्डावादियों एवं दुराग्रहियों के मुख को प्रमाण रूपी वाणों से भर दिया है। जिससे सभी सनातन धर्मी गौरव का अनुभव कर रहें हैं।

बाबा विश्वनाथ एवं माँ अन्नपूर्णा की कृपा आप पर बनी रहे।

नीलमणि शास्त्री

अखिल भारतीय उभय भारती

महिला आश्रम शांकर घाट, नरसिंहपुर (म. प्र.)

●

॥ **श्रीराम** ॥

कु. लक्ष्मीमणि शास्त्री

दूरभाष : (05495) 2328

संस्कृत विद्यालय

रामपुर

गाजीपुर (उ. प्र.)

माननीय मिश्र जी!

सादर हरि स्मरण

शंकराचार्य परम्परा एवं संस्कृति रक्षक परिषद् द्वारा प्रकाशित आपका ग्रन्थ 'अमिट कालरेखा' अर्वाचीन मतखण्डन एवं अमिट कालरेखा वितण्डावादी मतखण्डन का आद्योपान्त अनुशीलन कर परम प्रसन्नता हुई। आपने आदिशंकराचार्य का आविर्भाव ई. पू. 507 तथा कैलाश गमन ई. पू. 475 ऐतिहासिक विवरणों एवं अकाट्य प्रमाणों द्वारा सुनिश्चित किया है एवं सभी विवादों को मूलतः नष्ट कर दिया है। यह सभी सनातनधर्मावलम्बियों के लिए गौरव की बात है। आपके इस सत् प्रयास से प्रमाद युक्त दुराग्रहियों का मस्तक तो नीचा होगा ही साथ-साथ उनकी जिह्वा एवं लेखनी का चापल्य भी समाप्त हो जायेगा। आपने यह महत् कार्य करके धर्म की

ध्वजा फहराने की कड़ी में एक ऐतिहासिक कार्य किया। जिससे आप सहज में ही सभी सिद्धान्त निष्ठों के स्नेह भाजन बन गये हैं।

भगवान चन्द्रमौलीश्वर एवं जगदम्बा की असीम अनुकम्पा आप पर बनी रहे जिससे आपका चरमोत्कर्ष होता रहे एवं इस प्रकार के सद्कार्यों को करते रहें।

शुभाकांक्षिणी

लक्ष्मीमणि शास्त्री

अखिल भारतीय उभय भारती

महिला आश्रम शांकर घाट

नरसिंहपुर (म. प्र.)

●

एम. डी. / 23

दिल्ली–110034

दिनांक : 28.5.2000

स्नेहशील अधिवक्ता महोदय श्री मिश्र महाभाग।

आयुष्य के नपने से आशीर्वाद।

वैदुष्य के नपने से नमस्कार स्वीकारें।

कल डाक से आप द्वारा प्रेषित 'अमिट कालरेखा' मिली। मोतियाबिन्द से पीड़ित होने से मैं उसे ठीक ढंग से पढ़ भी नहीं सका। कुछ अंश पढ़वा कर सुने अवश्य हैं। मैं निर्विकल्प भाव से कह सकता हूँ कि आपकी रचना अमिट कालरेखा श्री उदयवीर शास्त्री के विचारों की फोटोस्टेट प्रतिमात्र है। उसमें मौलिक चिन्तन का सर्वथा अभाव है। अछूती अवधारणा उसमें बिल्कुल नहीं है।

खैर मैंने भी इस विषय पर लिखा है। मेरे अभिमत में आदिशङ्कराचार्य का समय बी.सी. 44-13 बी.सी. है।

मेरा जन्म 7.8.1914 है। मेरी आयु का अनुमान आप लगा सकते हैं। इस जर्जर देह को लेकर मैं बनारस आ सकता हूँ। आमने सामने विचार विनिमय उचित रहेगा। इसे शास्त्रार्थ का रूप न दिया जाय। अक्टूबर के बाद ही ऐसा होना संभव है।

आपके वैदुष्य और श्रम से परिवृत्त।

चन्द्रकान्त बाली

बाली जी के पत्र का प्रत्युत्तर

आदरणीय वयोवृद्ध मनीषी

चन्द्रकान्त बाली महोदय

प्रणाम,

आपका 28 मई 2000 का लिखा हुआ पत्र मुझे प्राप्त हुआ। अतिशीघ्र प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए आपको धन्यवाद। प्रथम दृष्ट्या पुस्तक के कुछ अंशों के अवलोकनोपरान्त व्यक्त आपके मन्तव्य पर अपनी प्रतिक्रिया न प्रकट करते हुए मैं कुछ उन बिन्दुओं की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ जिनका मनन आपके विचारों में सम्भवतः परिवर्तन ला दे।

'अमिट कालरेखा' मेरे स्वतन्त्र विचारों पर आधारित पुस्तक है जो कि मेरे निम्नलिखित अनुसन्धानों का परिणाम है यथा–

1. आचार्य शङ्कर का जन्म ई. सन् पू. 521 से प्रवर्तित विक्रम के शासन काल के 14वें (गत) अथवा 15वें (वर्तमान्) वर्ष में हुआ था। द्रष्टव्य–अमिट कालरेखा। बिन्दु 8। पृष्ठ 15।
2. कम्बोज राजा जयवर्मन (3) के अभिलेख में उल्लिखित शङ्कर गोवर्द्धन मठ पुरी के 81वें शङ्कराचार्य शङ्कर थे। द्रष्टव्य–अमिट कालरेखा। बिन्दु 9। पृ. 16-17 तथा परिशिष्ट 4। पृष्ठ 67-71।
3. आचार्य शङ्कर के समकालीन राजा सुधन्वा दिल्ली के सम्राट् पृथ्वीराज चौहान (3) की 57वीं पूर्ववर्ती पीढ़ी में हुए थे। द्रष्टव्य-अमिट कालरेखा। निष्कर्ष। पृष्ठ 44 व परिशिष्ट 1 पृष्ठ 52-56।
4. सुरेश्वराचार्य द्वारा उल्लिखित धर्मकीर्ति, धर्मकीर्ति सागरघोष नामक गौतमबुद्ध के पूर्ववर्ती बुद्ध थे। द्रष्टव्य-अमिट कालरेखा-1 बिन्दु 16। पृष्ठ 27-28।
5. आचार्य शङ्कर द्वारा उल्लिखित कार्षापण मुद्रा एक सार्वदेशिक मुद्रा के रूप में सम्पूर्ण भारतवर्ष में मौर्यों के पूर्व प्रचलित थी। यहाँ मौर्यों से तात्पर्य उस मौर्य साम्राज्य से है जिसकी स्थापना चन्द्रगुप्त मौर्य ने की थी। द्रष्टव्य। अमिट कालरेखा। पृष्ठ 23-25। बिन्दु 14।
6. स्रुघ्न नगर की समृद्धि एवं पतन काल के आधार पर आदिशङ्कराचार्य का काल ई. पू. पांचवी शताब्दी। द्रष्टव्य-अमिट कालरेखा। बिन्दु। 5। पृष्ठ 26।

7. सुरेश्वराचार्य द्वारा दिया गया भर्तृहरि के ग्रन्थ का कथित उद्धरण भर्तृहरि का न होकर व्याडि के प्राचीन ग्रन्थ संग्रह का है। ह्वेनसाङ्ग द्वारा उल्लखित बौद्ध भर्तृहरि, वाक्यपदीयकार भर्तृहरि से भिन्न व्यक्ति थे। द्रष्टव्य-अमिट कालरेखा। बिन्दु 1 8। पृष्ठ 29-36।

कृपया आप यह बताने का कष्ट करें कि मेरे उपर्युक्त अनुसन्धानात्मक आधार उदयवीर शास्त्री के किन विचारों की छायाप्रति हैं और वे शास्त्री जी के किस ग्रन्थ में समाहित हैं ?

जहाँ तक मौलिकता का प्रश्न है मेरा अभिकथन निम्न है—

1. निःसन्देह यह कथन कि आचार्य शङ्कर का जन्म ई. पू. 507 में हुआ था, मेरा मौलिक अभिकथन नहीं है बल्कि यह तो परम्परागत मान्य मत की पुनरावृत्ति है जिसे विभिन्न मापदण्डों की कसौटी पर कस कर मैंने कुन्दन पाया है।
2. मेरे उपर्युक्त अभिकथन की ही भाँति आप का यह अभिमत कि आचार्य शङ्कर का जन्म ई. पू. 44-13 में हुआ था आपका मौलिक मत नहीं है क्योंकि आपके जन्म वर्ष 1914 में मैसूर महाराज के पण्डित धर्माधिकारी के तनुज वेङ्कटाचल शर्मा ने अपने ग्रन्थ 'शङ्कराचार्य चरित्रम्' में उक्त काल का उल्लेख किया है। एक परवर्ती विद्वान् एन. रमेशम ने 1971 ई. में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'श्रीशङ्कराचार्य' में भी उपर्युक्त मत की पुष्टि करने का प्रयास किया है।
3. यदि एक नये सम्वत् जिसका प्रवर्तन 521 ई. पू. में हुआ था पर आधृत विचार में मौलिकता का नितान्त अभाव है तो क्या आप द्वारा अन्वेषित 622 ई. पू. में प्रवर्तित शक सम्वत् से सम्बन्धित आपका लेख (भारतीय इतिहास की प्रशस्ति पगडंडिया जो कि सम्भवतः समाज धर्म एवं दर्शन नामक पत्रिका में अब से लगभग 8 वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था) क्या मौलिक कहा जा सकता है ?
4. आपका शङ्कराचार्य के काल से सम्बन्धित मत असंदिग्ध रूप से शृङ्गगिरि मठ की उस विभ्रान्त धारणा पर आधारित है जिसका खण्डन मेरी पुस्तक में किया जा चुका है। द्रष्टव्य-अमिट कालरेखा। बिन्दु 6 व 7। पृष्ठ 9-14।
5. मैंने अपनी पुस्तक के स्रोतसन्दर्भ में 174 उद्धरणों का उल्लेख किया है जिनमें उदयवीर शास्त्री का एक भी उद्धरण नहीं है। सम्भवतः बिन्दु 14 में उत्तरपक्ष के अन्तिम अनुच्छेद (अमिट कालरेखा। पृष्ठ 25) ने आपके मस्तिष्क में इस

विचार को जन्म दिया कि मेरी पुस्तक उदयवीर शास्त्री के विचारों की छाया मात्र है और उसमें मौलिकता का नितान्त अभाव है। वस्तुतः काशिकानन्द द्वारा अपने लेख में उदयवीर शास्त्री के इस विचार का कि 'पंक्तिसाम्य के आधार पर काल निर्धारण इतिहास के साथ अन्याय करना होगा' उपहास किया गया है तथा काशिकानन्द ने व्यङ्गोक्ति की है कि–'शास्त्री जी ने कहा है कि वे इस तथ्य पर गम्भीरता पूर्वक विचार करेंगे परन्तु ऐसा उन्होंने नहीं किया।' इसी कारण मैंने उक्त विषय पर भी गम्भीरता पूर्वक विचार कर शास्त्री जी के मत का भी मण्डन कर दिया है परन्तु मेरी पुस्तक का वही एकमात्र आधार नहीं है। द्रष्टव्य-अमिट कालरेखा। बिन्दु 18। पृष्ठ 29 से 36।

आपकी अवस्था व विद्वता को पूर्ण सम्मान देते हुए आपके निर्देशानुसार इसे शास्त्रार्थ का रूप न देते हुए आमने सामने बैठकर विचार विनियम करने के प्रस्ताव को मैं स्वीकार करता हूँ यदि आप 1 सितम्बर से 9 सितम्बर के मध्य वाराणसी आ सकें तो विचार विनिमय का अवसर हमें प्राप्त हो सकेगा। उस अवधि में वाराणसी में द्वयपीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषितजगद्गुरुशङ्कराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज भी रहेंगे उनके सम्मुख विविध विद्वानों से विचार विमर्श अथवा शास्त्रार्थ का आयोजन मेरी संस्था द्वारा उक्त अवधि में किया गया है। आपके वाराणसी प्रवास के लिए भोजन एवं आवास की व्यवस्था मेरी संस्था की ओर से आपके निर्देशानुसार की जा सकती है।

इस उम्र में भी आप इतने सक्रिय हैं तथा अक्षुण्ण विद्यानुसार से युक्त हैं इस तथ्य ने आपके प्रति मेरे मन में अपार श्रद्धा उत्पन्न कर दी है जिसका पुस्तक के विषय में व्यक्त विचारों से कोई संयोग नहीं है। वैचारिक मतभेद की स्थिति में शास्त्रार्थ के द्वारा पूर्वाग्रह एवं दुराग्रह से परे रहकर यदि निराकरण किया जाय तो इसमें बुरा कुछ नहीं है।

प्रति,
श्री चन्द्रकान्त बाली
एन. डी. 23 पीतमपुरा
दिल्ली–110034

आपके विद्यानुराग के प्रति श्रद्धावनत्
परमेश्वरनाथ मिश्र
जून 2000 ख्रिष्टाब्द

श्रीमान् परमेश्वरनाथ मिश्र,

हरि स्मरण

हमारे यहाँ के एक सज्जन ने आपकी लिखी हुई "अमिट कालरेखा" नामक पुस्तक हमें दी और बताया कि इसमें तुम्हारे गुरुजी का खण्डन किया है। (आदिशङ्कराचार्य के काल विषयक लेख का) प्रथम हमने सोचा कि आप कोई बहुत बड़े भारी विद्वान् होंगे, शास्त्रों एवं इतिहास के महान् वेत्ता होंगे। हमें प्रस्तुत पुस्तक से कुछ विशिष्ट तथ्य प्राप्त होगा। परन्तु पुस्तक खोलते ही भारी निराशा हुई कि आपके प्रकाशकीय में जो अशिष्ट एवं अभद्र भाषा प्रयोग देखा कि हमारे प. पू. गुरुजी तो क्या सामान्य व्यक्ति के लिए भी नाम के आगे "श्री" शब्द का प्रयोग सामान्य शिष्टाचारानुसार किया जाता है वह भी कहीं देखने नहीं मिला। बाद में किसी किसी को "अनन्तश्री" "परमपूज्य" आदि विभूषणों से विभूषित किया। इससे स्पष्ट होता है कि ऐतिहासिक तथ्य को सामने लाना आप का मुख्य लक्ष्य नहीं है किन्तु किसी को नीचा दिखाना आप का मुख्य ध्येय है। अन्यथा आप इस तुच्छ आशय से ऊपर उठकर "आविर्भाव समय" ग्रन्थ के मुख्य मुद्दों पर विचार करते। ऐसा न करते हुए आपने अपना वकीलपना ही प्रकट किया है। झूठ को सच सिद्ध करना और सच को झूठ सिद्ध करना यह वकीलों के बाँये हाथ का खेल है। इसी का प्रदर्शन आपके ग्रन्थ में है।

इस प्रकार भारतवर्ष की महत्ता को विश्व के सन्मुख रखने का प्रयास उसकी महत्ता को नष्ट करना है। बीच-बीच में आपने हमारे प.पू. गुरुजी के लिए "श्रीमद् भागवत नहीं पढ़ा, विष्णुपुराण नहीं पढ़ा, कोई भी मूल ग्रन्थ नहीं पढ़ा, वह नहीं पढ़ा, यह नहीं पढ़ा"–इत्यादि लिखा है। ऐसा कोई सामान्य से सामान्य मनुष्य भी प.पू. गुरुजी के लिए नहीं लिखेगा। श्रीमद्भागवत की मूल मन्त्रों एवं श्लोकों सहित आदि से अन्त तक व्याख्या करने वाले प.पू. गुरुजी पूरे भारतवर्ष के समस्त दशनामी संन्यासी समाज में श्रीमद्भागवत के अद्वितीय प्रवक्ता माने जाते हैं। अतः मूल ग्रन्थ श्रीमद्भागवत को प.पू. गुरुजी ने पढ़ा है या नहीं–वाली यह बात आपश्री स्वयं ही उनकी भागवत कथा के श्रोताओं से पूछना यह आपके लिए अधिक उपयुक्त होगा।

दक्षिण के माध्व सम्प्रदायवाले अद्वैतवादियों पर अनेक अपशब्दों से आक्षेप करते रहे और यहाँ तक उन लोगों ने यह कह डाला "असत्यमप्रतिष्ठ ते जगदाहुरनीश्वरम्" इत्यादि गीतावचनानुसार यह अद्वैतवाद असुरों की विद्या है। अतएव वे जितने भी अद्वैतवादी हैं वे सब के सब असुर हैं। उन लोगों ने अद्वैतवाद को झूठा बताते हुए

शास्त्रार्थ के लिए आवाहन किया। उस समय आपके ये ''अनन्तश्री'' एवं ''परमपूज्य'' लोगों के कपड़े खराब हो गये थे। और तो बाकी कड़वा घूट पीते रह गये थे। पूरे दक्षिण भारत के अखबारों में बार-बार इस विषय पर चर्चा चलने लगी थी। क्रमशः जिसका प्रचार उन लोगों ने काशी, हरद्वार, ऋषिकेश आदि स्थान तक कर डाला था। तत्कालीन शृङ्गेरीपीठाधिपति श्रीअभिनवविद्यातीर्थ स्वामी ने द्वादश शताब्दी समारोह के समय शृङ्गेरी पहुँचने पर परमपूज्य गुरुजी के समक्ष इन लोगों को उत्तर देने का प्रस्ताव रखा था। आश्चर्य है उस समय आप के ये ''अनन्तश्री'' एवं ''परमपूज्यों'' में से कोई भी आगे बढ़ने को तैयार नहीं हो रहा था। अन्ततः हमारे परमपूज्य गुरुजी शास्त्रार्थ हेतु बंगलूर गये। जहाँ ये द्वैतवादी एकत्रित थे। तीन दिन तक वहाँ शास्त्रार्थ चला। जिसमें द्वैतवादी परास्त हुए। यद्यपि उस समय द्वैतवादी अपना पराजय अन्दर से जानते हुए भी स्वीकार नहीं कर रहे थे। अतएव पूर्व सम्पन्न शास्त्रार्थ का विषय संक्षिप्तरूप से छपवाकर वितरित किया। लिखित रूप से भी शास्त्रार्थ बाद में चला। और जब दूसरी बार पुनः द्वैतवादियों के गढ़ बंगलूर जाकर हमारे परमपूज्य गुरुजी ने आवाहन किया। अन्ततः वहाँ के सुप्रसिद्ध अद्वैतसिद्धान्तानुयायी ''श्री तिरुच्ची स्वामी'' (श्रीकैलाश मठ-बंगलूर) के पास जाकर द्वैतवादियों ने माफी माँगी और यह स्वीकार किया कि आगे हम ऐसा कुप्रचार नहीं करेंगे।

हम यह कोई कहानी नहीं लिख रहे हैं। माध्व सम्प्रदाय वालों से किये गये शास्त्रार्थ विषय का मुद्रण प्रकाशन ''अद्वैत विजय वैजयन्ती'' नाम से हिन्दी अनुवाद के साथ हो गया है। आपके ''अमिट कालरेखा'' को पढ़ने से हमको इतना तो मालूम पड़ा कि आप जैसा व्यक्ति उस सानुवाद ग्रन्थ को भी तीन जन्म में भी यथावत् रूप से नहीं समझ पायेंगे ऐसी विद्वता आपके इस पुस्तक में प्रकट हुई है। आज से 40-50 वर्ष पूर्व काशी में रामानुज सम्प्रदायवालों ने अपने ''शतदूषणी'' (अद्वैत वेदान्त पर सौ दूषण) नामक वेंकटनाथ कृत ग्रन्थ को लेकर बोला करते थे कि माध्व सम्प्रदाय व्यासतीर्थ का खण्डन श्रीमधुसूदन सरस्वती ने 'अद्वैत सिद्धि' नामक ग्रन्थ से किया किन्तु हमारी ''शतदूषणी'' का उद्धार वे भी नहीं कर सके। प.पू. गुरुजी ने उसका भी निराकरणात्मक ''अद्वैतपरिशुद्धि'' नामक ग्रन्थ लिखा। यद्यपि उसी दौरान पं. श्री अनन्त कृष्णशास्त्रीजी ने ''शतभूषणी'' लिखी थी। आज भी काशी के विद्वान् ''अद्वैतपरिशुद्धि'' को अपनी शैली का अद्वितीय ग्रन्थ मानते हैं क्योंकि यह श्लोकबद्ध एवं सव्याख्या है। हमारे प.पू. गुरुजी के लिखे यह एक-दो ग्रन्थ ही नहीं अपितु सिद्धान्त प्रतिपादक, दार्शनिक, साहित्यिक चालीस ग्रन्थ और भी मुद्रित हुए हैं। उन सबको

देखे पढ़े बिना ही लिखा है कि–"श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराणादि को हमारे प० पू० गुरुजी पढ़ा ही नहीं है। यह कहना लज्जा को भी लज्जित करने की बात है।

"आविर्भाव समय" ग्रन्थ में दिये हुए तथ्यों को उलट पुलट करके अनैतिहासिक व्यक्तियों को आगे करके खण्डनाभास करने का आपने व्यर्थ प्रयास मात्र किया है। आपकी यह विशेषता "अमिट कालरेखा" के पन्ने पलटने मात्र से ही ज्ञात हो जाती है। काल निर्णयार्थ जैन ग्रन्थों का जो उद्धरण दिया है उसका स्पर्श मात्र भी आपने अपने ग्रन्थ में नहीं किया और एक मात्र "चोरी" शब्द को लेकर पन्ने के पन्ने काले कर दिये हैं। और तो और आपश्रीं यहाँ के कालनिर्णयार्थ न्यूयार्क तक की यात्रा भी करके आये। जबकि स्वयं आचार्य द्वारा रचित मूलग्रन्थों को देखने का प्रयास भी आपसे नहीं हो पाया है। इतना ही नहीं हमें आश्चर्य इस बात का है "आविर्भाव समय"–यह छोटा-सा मात्र 34 पृष्ठों का ग्रन्थ भी आप आदि से अंत पर्यन्त द्वेष की ज्वाला से भुन जाने के कारण आप न्यायविद् होने के उपरान्त भी नहीं पढ़ सके हैं। उसके अंत में यह साफ लिखा है कि संन्यास परम्परा अनादि काल से चली आ रही है। उसमें 2500 वर्ष पूर्व कोई शङ्कर नाम के विद्वान् हुए हों, वे आचार्य भी हुए हों, तो उसमें कोई विवाद नहीं है। हम केवल भाष्यकार आचार्य शङ्करभगवत्पाद के आविर्भाव समय के सम्बन्ध में ही विचार कर रहे हैं। अन्य का नहीं। उसके लिए प्रमाण मुख्य रूप से भाष्यग्रंथ एवं उनसे सम्बन्धित वार्त्तिकादि ग्रन्थ ही होंगे। दुनिया भर के अनावश्यक तथ्यों को जोड़कर वाचकों को भ्रमित करने की वकीलता आपने अपने इस पुस्तक में की है।

मैंने प० पू० गुरुजी को यह ग्रन्थ दिखाया है उन्होंने आपाततः पढ़ भी लिया है और उनका कहना है कि आप इस ग्रंथ में जो भी सुधार करना चाहें तो अभी पन्द्रह दिन का समय है उसे सुधार लीजिए। तत्पश्चात् आपने जो भी लिखा है उसी को आप लोगों के द्वारा स्वीकृत प्रमाण मानकर प० पू० गुरुजी द्वारा उसका यथावसर निराकरण करते समय जो भी आक्षेप-प्रत्याक्षेप होगा उसके लिए आप लोग ही जिम्मेदार होंगे।

मुम्बई विश्वविद्यालय कालेज की पूर्व प्राध्यापिका

सुश्री चारुलता

बी० 101 ज्योति प्लाजा

एस० बी० रोड, कांदिवली (प०) मुम्बई-400067

पञ्जीकृत डाक से प्राप्ति स्वीकृति प्रपत्र सहित

दिनाङ्क 1.10.2000

सुश्री चारुलता,
बी० 101, ज्योति प्लाजा
एस० बी० रोड, कांदिवली (प०)
मुम्बई-400067

सन्दर्भ : आपका पत्र दिनाङ्कित 31.7.2000

विषय : 'अमिट कालरेखा–अर्वाचीन मतखण्डन' पुस्तक

महोदया,

आपके उपर्युक्त पत्र के सम्बन्ध में एतस्मिन् पश्चात् अभिकथन अभिप्रेत हैं—

1. लेखक महोदय की विद्वता तथा पुस्तक की उपादेयता से सम्बन्धित आपकी असंगत टिप्पणियाँ अंध-गुरुभक्ति, संकीर्ण साम्प्रदायिक मानसिकता से प्रादुर्भूत पूर्वाग्रहावृत्त मति का प्रतिफल प्रतीत होती है क्योंकि वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण रखने वाले ऐसे अनेक दिग्गज एवं मूर्धन्य विद्वानों ने जिनसे लेखक का अब तक साक्षात्कार भी नहीं हुआ है, लेखक महाभाग की विद्वता एवं पुस्तक की उपादेयता को मुक्त कण्ठ से स्वीकारते हुए विशेषरूप से लेखक की विद्वता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है यथा–

   (I) **डॉ० जयमन्त मिश्र,** पूर्व कुलपति, का० सि० संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, मिथिला विश्वविद्यालय, बिहार

   (II) **डॉ० एस० जी० कौंटावाला,** पूर्व प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष : संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग।
   पूर्व संकाय प्रमुख : कला संकाय।
   पूर्व निदेशक : पौर्वात्य संस्थान, महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा, गुजरात।

   (III) **डॉ० सी० वी० रावल,** पूर्व प्राध्यापक : दर्शनशास्त्र विभाग, सेंट जेवियर्स कालेज, अहमदाबाद, गुजरात।

   (IV) **डॉ० गौतम वाडीलाल पटेल,** विभागाध्यक्ष : संस्कृत विभाग, सेंट जेवियर्स कालेज, नवरंगपुरा, अहमदाबाद, गुजरात।

   (V) **डॉ० गोपाल कृष्ण,** प्राध्यापक : इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

   (VI) **श्री जानकीनाथ शर्मा,** सम्पादन विभाग : कल्याण, गीता प्रेस, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

(VII) **आचार्य झम्मन मिश्र,** 'व्याख्यान दिवाकर', रायपुर, मध्य प्रदेश।

(VIII) **डॉ० कमलेश कुमार सी० चोकशी,** रीडर : संस्कृत विभाग, गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद, गुजरात।

(IX) **डॉ० नितिन एस० व्यास,** विभागाध्यक्ष : दर्शन शास्त्र विभाग, महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा, गुजरात।

(X) **डॉ० रमेशचन्द्र मुरारी,** व्याख्याता : संस्कृत अकादमी, द्वारका, गुजरात। एवं अनेकानेक विद्वान् उपर्युक्त विद्वानों में से क्रमांक 2, 3, व 4 पर उल्लिखित विद्वानों के लेख गुजरात सरकार द्वारा द्वादश सदी स्मारक ग्रन्थ में भी प्रकाशित हुए थे। क्रमांक 4 पर उल्लिखित विद्वान् तो उक्त ग्रन्थ के सम्पादक भी थे।

2. 'स्वामी जी' अन्त्याश्रमी होने के कारण द्वितीयाश्रमी लेखक के लिये सर्वदा प्रणम्य एवं परमादरणीय हैं। विषयगत मतभेद तो महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास और उनके शिष्य ऋषि जैमिनी के ग्रन्थों में भी परिलक्षित होता है तो क्या इसका तात्पर्य यह है कि गुरु-शिष्य ने एक दूसरे को नीचा दिखाने के उद्देश्य से ही अपने ग्रन्थों का प्रणयन किया था? यह कहना कि पुस्तक में 'स्वामी जी' के लिए कहीं भी 'श्री' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है मात्र सत्य तथ्य की ओर से दृष्टि विचलन ही माना जा सकता है। पुस्तक में 'विषय प्रवेश' के द्वितीय पृष्ठ की 22वीं पंक्ति में 'महामण्डलेश्वर श्री काशिकानन्द जी' तथा 7वीं पंक्ति में 'काशिकानन्द गिरि महोदय' के रूप में 'स्वामीजी' का उल्लेख शिष्टाचारानुसार ही किया गया है जबकि वास्तविकता तो यह है कि 'स्वामीजी' के जिस 14 पृष्ठीय लेख का लेखक महोदय ने खण्डन किया है उसमें भी लेखक के रूप में स्वामी जी का उल्लेख 'श्री' विहीन 'महामण्डलेश्वर स्वामी काशिकानन्द गिरि' किया गया है परन्तु अपनी पुस्तक में 'श्री', महोदय, जी' आदि पदों का प्रयोग कर लेखक महोदय ने स्वामी जी के प्रति व्यक्तिगत रूप से अपनी श्रद्धा का ही प्रदर्शन किया है।

3. 'प्रकाशकीय' में भी प्रथम पृष्ठ की प्रथम पंक्ति में 'महामण्डलेश्वर स्वामी काशिकानन्द गिरि जी' 5वीं पंक्ति में 'स्वामी काशिकानन्द जी' 6वीं पंक्ति में 'महात्मा काशिकानन्द जी' तथा 7वीं व 22वीं पंक्तियों में 'महामण्डलेश्वर स्वामी काशिकानन्द जी' के रूप में 'स्वामीजी' का उल्लेख कर सर्वतोभावेन शिष्टाचार का सम्यक् अनुपालन किया गया है। प्रकाशकीय में 'स्वामीजी' की व्यक्तिगत आलोचना न कर उन आधुनिक अन्वेषकों की आलोचना की गई है जिनका अन्वेषण 'स्वामीजी' के लेख का आधार बना। वस्तुतः 'स्वामीजी' ने भी अपने

सम्बन्धित लेख में एक तत्कालीन पीठस्थ शङ्कराचार्य व अन्य विद्वानों का नामोल्लेख रहित तथा उदयवीर शास्त्री का नामोल्लेख सहित उत्कट प्रत्याख्यान किया है तो क्या ऐसा करके उन्होंने 'अशिष्टता' की है ? पुस्तक में सामान्यतया चार पीठों के सम्प्रति पीठस्थ शङ्कराचार्यों के लिए 'अनन्तश्री' एवं 'परमपूज्य' पदों का प्रयोग किया गया है जैसा कि शिष्टाचार के अनुक्रम में उन महात्माओं के लिए बहुधा किया जाता है। पता नहीं इस पर आपको क्यों आपत्ति है ? आपने अपने पत्र में लिखा है कि जब लेखक के 'अनन्तश्री' एवं 'परमपूज्य' लोगों अर्थात् शङ्कराचार्यों के कपड़े द्वैतवादियों के भय से खराब हो गये तब 'स्वामीजी' ने उन्हें शास्त्रार्थ में परास्त कर प्रकारान्तर से शङ्कराचार्यों के वस्त्रों का परिमार्जन किया। आपके उक्त उल्लेख से प्रकट होता है कि शङ्कराचार्यों के प्रति राग-द्वेपजनित द्वन्द्वभाव से आपकी विवेक बुद्धि परिवृत्त हो गयी है जो कि अनपेक्षित ही नहीं अपितु आपके शङ्कर मतावलम्बी होने पर भी प्रश्नचिह्न है। मठाम्नाय-महानुशासनम् अपरोल्लेख महासेतु में, जो कि आचार्य शङ्कर कृत शाङ्करमतावलम्बी दशनामी सम्प्रदाय के संन्यासियों के लिये परमादरणीय ग्रन्थ है आचार्य शङ्कर का स्पष्ट व्यादेश है कि उनके पीठ पर विधिवत आरूढ़ आचार्य को 'स्वयं उन्हें ही' अर्थात् 'आचार्य शङ्कर ही' मानना होगा। अपने उक्त व्यादेश की प्रमाणिकता हेतु आचार्य शङ्कर ने श्वेताश्वतरोपनिषद् का एक वचन उद्धृत किया है। यथा—'जिसकी परमेश्वर में उत्कृट यानी अकृत्रिम भक्ति है और जैसी परमेश्वर में है वैसी ही ब्रह्मविद्योपदेष्टा गुरु में भी है उस उत्तम महात्मा को ही कहे गये इन तत्वों का तात्पर्य बोध होता है।' वृहदारण्यक भाष्य में आचार्य शङ्कर ने कहा है—'ईश्वरत्व जातिगत भी होता है यथा एक राजकुमार का अपने से अधिक सामर्थ्यवान् मन्त्री और सेनापति पर ईश्वरत्व'—आचार्य के उक्त अभिकथन से स्वयं सिद्ध है कि कोई भी शाङ्कर परम्परा का परिव्राजक चाहे कितना बड़ा विद्वान् क्यों न हो उस पर आचार्य द्वारा स्थापित चार पीठों : शारदामठ-द्वारका, गोवर्द्धनमठ-पुरी, ज्योतिर्मठ-बदरिकाश्रम व शृङ्गेरी मठ पर विधिवत पदारूढ़ शङ्कराचार्यों का आचार्य परम्परा से ईश्वरत्व है। अतएव शङ्कर मतावलम्बी होने के कारण आपको यह मानना ही होगा कि 'स्वामीजी' पर भी सम्प्रति पीठस्थ शङ्कराचार्यों का ईश्वरत्व है। यह तो सर्वविदित तथ्य है कि एक अधीनस्थ का यह परम कर्त्तव्य होता है कि वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग कर अपने अधिपति की मर्यादा की रक्षा करें। अतएव 'स्वामीजी' ने द्वैतवादियों को पराजित कर शाङ्कर परम्परा की मर्यादा वृद्धि करते हुए स्वकर्तव्य का अनुपालन किया है जिसके लिए परिषद् और लेखक 'स्वामीजी' के प्रति अपना

हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

4. आपके पत्र में गुम्फित गुरुप्रशस्तिवाचनावलोकन से प्रथम द्रष्ट्या प्रतीत होता है कि 'स्वामीजी' अद्वैत वेदान्त के अद्वितीय विद्वान् हैं और 'एकोऽहं द्वितीयो नास्ति' की उक्ति उनके लिए सर्वथा उपयुक्त है क्योंकि उन्होंने चालीस ग्रन्थों का प्रणयन कर विशेष कर 'अद्वैत परिशुद्धि' नामक ग्रन्थ द्वारा वह कर दिखाया है जो सम्भवतः वाचस्पति मिश्र, विद्यारण्य मुनि, आनन्दगिरि, मधुसूदन सरस्वती, भारती कृष्ण तीर्थ, हरिहरानन्द 'करपात्री', प्रभृति मनीषीगण भी न कर सके ? लेखक महाभाग का अभिमत है कि वेदान्त और ब्रह्मविद्या में संन्यासियों का विशेषाधिकार है अतएव तत्सम्बन्धित 'स्वामीजी' के ग्रन्थों पर तथा उनकी विद्वता पर मन्तव्य देना अथवा टिप्पणी करना सामान्यतया विद्वान् परिव्राजकों के अधिकार क्षेत्र में पड़ता है जिसके कारण इस सम्बन्ध में अपना अभिमत व्यक्त कर लेखक महोदय महान् परिव्राजकों के अधिकार क्षेत्र में अतिक्रमण नहीं करना चाहते। जहाँ तक 'स्वामीजी' के उस आलोच्य लेख का प्रश्न है जिसके द्वारा उन्होंने आचार्य शङ्कर का काल '788 ई० से 820 ई०' सिद्ध करने का प्रयास किया है, उस पर लेखक का सुचिन्त्य मत यह है कि 'स्वामीजी' ने लौकिक विद्या के विद्वानों के अधिकार क्षेत्र में एक 'इतिहासविद्' के रूप में अतिक्रमण कर एक विभ्रमकारी तिथि को मान्यता प्रदान करने का प्रयास किया जिसके कारण लेखक महोदय के समक्ष पुष्ट मान्य ऐतिह्य मानदण्डों के प्रामाणावलोक में 'स्वामीजी' के 'कृत्रिम मत' को खण्डित करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प शेष न था। 'स्वामीजी' ने आदि शङ्कराचार्य के उस शिष्टाचार का पालन नहीं किया जिसकी स्थापना उन्होंने संसारी मनुष्यों से सम्बन्धित उभयभारती द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर न देकर, लौकिक विद्वानों के अधिकार क्षेत्र में अतिक्रमण न करके किया था। सर्वज्ञ होते हुए भी गृहस्थाश्रम से सम्बन्धित प्रश्नों का स्वयं उत्तर न देकर परकाया प्रवेश का आश्रय लेकर राजा अमरुक के माध्यम से आचार्य शङ्कर ने उभय भारती के प्रश्नों का समाधान करना श्रेयस्कर समझा। इतिहास विद्या कर्मठ विद्वानों के अधिकार क्षेत्र की वस्तु है निवृत्तिमार्ग के संन्यासी के अधिकार क्षेत्र में तो वेदान्त व ब्रह्मविद्या ही आते हैं। 'स्वामीजी' का यह अतिक्रमण लेखक को स्वीकार्य नहीं है अन्यथा तो चतुर्थाश्रमी स्वामी जी लेखक के लिए सर्वदा पूजनीय हैं और रहेंगे।

5. स्वामी जी ने श्रीमद्भागवतादि पुराणों अथवा अन्य सम्बन्धित पुस्तकों को पढ़ा है या नहीं इसका प्रत्यक्ष ज्ञान लेखक को नहीं है। परन्तु उनके सम्बन्धित लेख के उस अंश को जो कि अमिट कालरेखा में बिन्दु 21 के पूर्वपक्ष में अन्तर्विष्ट

है पढ़ने के बाद एक सामान्य प्रज्ञा वाले व्यक्ति के द्वारा भी जिस निष्कर्ष पर सहज में पहुँचा जा सकता है वही निष्कर्ष लेखक द्वारा निकाला गया है। 'स्वामीजी' के लेख में जो तथ्यगत भूलें संप्राप्त हैं तथा जिनका पुस्तक में बिन्दु 21 के उत्तर पक्ष में स्पष्टतः उल्लेख किया गया है उन विसंगतियों का उत्तर न देकर व्यक्तिगत आक्षेप तथा महिमा गायन के माध्यम से आपने लेखक को प्रभावित करने का प्रयास किया है जो कि आपकी मानसिक दुर्बलता का द्योतक माना जा सकता है। यदि यह मान लिया जाय कि 'स्वामीजी' ने उक्त ग्रन्थों को पढ़कर आलोच्य लेख लिखा था तब तो बाध्य होकर हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि 'स्वामीजी' में मेधा (ग्रन्थ व ग्रन्थार्थ धारण क्षमता) का अभाव है। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि जो मेधावी नहीं है वह विद्वान् नहीं हो सकता। इस अप्रिय निष्कर्ष से बचने तथा 'स्वामीजी' की महत्ता को बनाये रखने के उद्देश्य से 'स्वामीजी' के स्रोतों का उल्लेख करते हुए लेखक महाशय को यह लिखना पड़ा कि ''स्वामीजी'' का सम्बन्धित लेख दूसरों के उद्धरणों पर आधारित है क्योंकि दूसरों के दोषपूर्ण उद्धरणों को उद्धृत करने से मूल स्रोत की सदोषता द्योतित होती है उद्धरणकर्ता की नहीं, साथ ही उनके मेधावी होने पर भी प्रश्न चिह्न नहीं लगता। यही कारण है कि सामान्यतया उपजीव्य ग्रन्थों में स्रोतों का उल्लेख कर दिया जाता है।

6. 'अमिट कालरेखा' में आचार्य शङ्कर के भाष्य ग्रन्थों में उल्लिखित उन ऐतिहासिक पुरुषों, स्थानों, मुद्राओं को आधार बनाया गया है जिनकी ऐतिहासिकता का प्रमाण 1000 वर्ष से भी पूर्व के ऐतिहासिक ग्रन्थों में प्राप्त होता है। आपने अपने पत्र में सप्रमाण एक भी ऐसे अनैतिहासिक व्यक्ति का उल्लेख नहीं किया है जिसको आगे कर लेखक ने तथ्यों को उलट-पुलट करने का प्रयास किया है प्रमाणों के अभाव में मात्र यही कहा जा सकता है कि उक्त उद्‌गार आपकी हताशा और कुण्ठा का परिणाम है। आपका यह कहना कि '34 पृष्ठों' के स्वामीजी के ग्रन्थ को द्वेष की ज्वाला से जल भुन जाने के कारण लेखक न्यायविद् होने के उपरान्त भी नहीं पढ़ सके हैं आपके स्वयं सहिष्णु अध्यवसायी होने पर प्रश्न चिह्न है। लेखक ने विषय प्रवेश के द्वितीय पृष्ठ के द्वितीय अनुच्छेद में 'स्वामीजी' के सम्बन्धित लेख का स्रोतोल्लेख किया है। आपको ज्ञात हो कि वह लेख मात्र 14 पृष्ठों का है 34 पृष्ठों का नहीं। सम्भवतः 'स्वामीजी' के मत का खण्डन हुआ किसी से सुनकर आप अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठीं और इतनी भी सहिष्णु न रह सकीं कि पूरी पुस्तक पढ़ कर तथ्यों के आधार पर उसकी स्वस्थ समीक्षा कर सकतीं। जहाँ तक जैन ग्रन्थों का प्रश्न है उसे

लेखक महोदय ने आचार्य के कालनिर्धारण में स्वतः प्रमाण न मानकर उसकी उपेक्षा कर दी है परन्तु आपके सूचनार्थ यह स्पष्ट किया जा रहा है कि जैन ग्रन्थों के आधार पर भी आदिशङ्कराचार्य का वही काल सिद्ध होता है जो लेखक को अभीष्ट है। आप जैन ग्रन्थों के प्रमाणों को देकर काल निर्धारित करें जैन ग्रन्थों के ही प्रमाणों के आधार पर उसका सम्यक् खण्डन कर दिया जायेगा। आपने पुस्तक की समीक्षा न कर लेखक के लिए 'झूठ को सत्य साबित करने वाला'; 'वकील' 'वकीलपना' आदि शब्दों का प्रयोग कर एक ऐसा कार्य किया है जिसकी कोई भी विद्वान् प्रशंसा नहीं कर सकता। भला लेखक का 'स्वामीजी' से क्या द्वेष हो सकता है? लेखक क्यों उनसे जल भुन सकता है? लेखक और उनकी अध्यक्षता में कार्यरत परिषद् का कार्य तो भगवत्पाद आचार्य शङ्कर द्वारा स्थापित परम्परा एवं संस्कृति का रक्षण करना है अतएव लेखक महोदय के द्वारा 'स्वामीजी' को नीचा दिखाने की कल्पना भी नहीं की जा सकती क्योंकि वे भी तो उसी परम्परा के परिव्राजक हैं जिसकी रक्षा के लिये परिषद् कृत संकल्प है। आपको ज्ञात हो कि लेखक महोदय किसी भी गुरु के दीक्षित शिष्य नहीं हैं जिसके कारण उनकी निष्पक्षता और तटस्थता सन्देह से परे है जो कि आपकी नहीं हो सकती। सम्भवतः आपको 'वकील' और 'अधिवक्ता' के अर्थ के सम्बन्ध में भी विभ्रम है। एक विश्वविद्यालय की पूर्व प्राध्यापिका होने के कारण आपसे यह अपेक्षा की जाती है कि उपर्युक्त दोनों शब्दों के अर्थ और उनकी वैधानिक स्थितियों के बारे में किसी विधि विशेषज्ञ तथा कुरान-शरीफ व अरबी भाषा के विशेषज्ञ से जानने का प्रयास करें। आप्त वाक्य है--शब्दों के प्रयोग में धर्म है, अतः शब्दों का अनुचित प्रयोग कर अधर्माचरण न करें।

7. आपका यह कहना कि स्वामी जी ने केवल भाष्यकार शङ्कर के काल का निर्धारण 788-820 ई० किया है और 2500 वर्ष पूर्व यदि कोई शङ्कर नाम के विद्वान् हों तो उसमें कोई विवाद नहीं, आपके तात्पर्यबोध पर प्रश्न चिह्न लगाता है। अपने सम्बन्धित लेख में 'स्वामीजी' ने नैय्यायिक पद्धति से आचार्य शङ्कर के आविर्भाव काल को 2500 वर्ष पूर्व मानने वालों को मोहग्रस्त सिद्ध करने का प्रयास किया है अथवा जिस तरह से अबोध बालकों को झूठा आश्वासन देकर फुसलाने का प्रयास किया जाता है वह किया है क्योंकि परम्परागत मान्यता के पोषक भाष्यकार शङ्कर और 2507 वर्ष पूर्व हुए शङ्कर को अभिन्न मानते हैं। स्वामीजी की पद्धति में आपके लिये लेखक महोदय का उत्तर यह है--भाष्यकार शङ्कर तो आज से 2507 वर्ष पूर्व ही हुए थे परन्तु यदि शङ्कर नामधारी कोई अन्य विद्वान् भी 788 ई० में हुए हों तो इसमें लेखक महोदय

को कोई आपत्ति नहीं है। आपके द्वारा लेखक को सुधार हेतु दी गई 15 दिन की अवधि समाप्त हुए लगभग सार्द्धमाह व्यतीत हो चुका है परन्तु अब तक पुस्तक की वस्तुनिष्ठ समीक्षा आपकी ओर से नहीं की जा सकी है। आपको विदित हो कि द्वितीयाश्रम के ब्राह्मणवंशावतंश परिषद् के अध्यक्ष उस आप्त वाक्य के अनुयायी हैं जिसमें कहा गया है–'वह ब्राह्मण ही क्या जो वाद से डर कर पलायन कर जाय' अतएव वे अपने द्वारा निर्धारित किये आचार्य शङ्कर के काल ई०पू० 507-475 का मण्डन करने तथा अर्वाचीन कृत्रिम काल ई० 788-820 का खण्डन करने हेतु दृढ़ प्रतिज्ञ हैं परन्तु व्यक्तिगत आक्षेप प्रत्याक्षेप हेतु नहीं, किन्तु एक चतुर्थाश्रमी ही अपनी मर्यादा भङ्ग कर व्यक्तिगत आक्षेप प्रत्याक्षेप में प्रवृत होने का प्रयास करेंगे तब लेखक महोदय को भी यथोचित उपक्रम का आश्रम ग्रहण करने के लिए वाध्य होना पड़ेगा जिसके लिये आप जिम्मेदार होंगी। आपके लिये विशेष सूचना यह है कि 'अमिट कालरेखा' का दूसरा भाग 'प्राचीन मत मण्डन' मुद्रणालयाधीन है जो कि सहस्त्रों प्रमाणों से संपृक्त एक वृहदाकार ग्रन्थ है। इसके अलावा 'मठाम्नाय-महानुशासनम्' भी लेखक की आङ्गल और हिन्दी द्विभाषीय व्याख्याओं से संवलित शीघ्र प्रकाश्य है। महानुशासनम् में आये उन शब्दों का जिनका आज तक लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् भी असंगत अर्थ करते आये हैं लेखक महाभाग द्वारा सत्यार्थ प्रकाश किया गया है, तो क्या इसका तात्पर्य यह है कि उक्त विद्वानों को नीचा दिखाने के लिये ही लेखक ने ऐसा किया है?

पत्र का आकार कुछ विस्तृत हो गया है अतः 'स्वामीजी' के चरणों में लेखक का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम निवेदित करते हुए इस प्रार्थना के साथ पत्र का समापन किया जा रहा है कि परमात्मा आपको ऐसी सद्बुद्धि दें जिसकी अपेक्षा एक विश्वविद्यालय की विदुषी प्राध्यापिका से की जा सकती है। कृपया ध्यान रखें भविष्य में पुस्तक की स्वस्थ समीक्षा से सम्बन्धित वाद-विवाद ही स्वीकार्य होगा व्यक्तिगत आक्षेप-प्रत्याक्षेप के पत्रों की उपेक्षा कर दी जायेगी।

कृते

सचिव,

शङ्कराचार्य परम्परा एवं संस्कृति रक्षक परिषद्

वृन्दावन काम्पलेक्स, अरुणा एपार्टमेण्ट

4, स्टेशन रोड लिलुआ, हावड़ा–711204

पञ्जीकृत डाक से प्राप्ति स्वीकृति प्रपत्र सहित

सितम्बर 20, 2001

स्वामी मुख्यानन्द पुरी
वरिष्ठ परिव्राजक
रामकृष्ण मिशन, वेलूड़ मठ
हावड़ा, पश्चिम बंगाल

श्री आचार्य शंकर-भगवत्पाद के आविर्भाव काल के बारे में भिन्न-भिन्न प्रकार के मत प्रचलित हुये हैं। विशेषकर अंग्रेजों के शासनकाल में पाश्चात्य विद्वानों ने जिनका आन्तरिक उद्देश्य खिस्तधर्मीय प्रचार तथा राजकीय स्वार्थसिद्धि की दिशा में था एवं जो सर्वदा तथा सर्वतोभावेन भारतीय उज्ज्वल इतिहास एवं उदात्त संस्कृति को अबद्धो वा सबद्धो वा संकुचित काल में अर्वाचीन तथा प्रतिभाहीन दिखाने की कोशिश सभी प्रमाणों को तोड़-मरोड़ कर करते थे, आचार्य जी के जीवन काल को ईसवी 788 से 820 निर्णय किया है।

इसी काल को कई पाश्चात्य विद्या तथा चिन्ताधारा से प्रभावित भारतीय विद्वानों ने भी समीक्षा के बिना गतानुगतिक ढंग से पुष्ट किया है। ऐसे लोगों द्वारा कई वर्ष पूर्व आचार्य जी के आविर्भाव काल के 1200 वर्ष की पूर्ति के उत्सव भी मनाये गये।

लेकिन दीर्घ एवं सुदृढ़ भारतीय परम्परा के अनुसार उनका आविर्भाव काल खिस्त पूर्व 507 के आस-पास ही प्रसिद्ध है। कई भारतीय विचारधारा सम्पन्न विद्वानों ने भी इसका ठोस प्रमाणों द्वारा समर्थन किया है। इसी भारतीय धारा में युक्त्याभासपूर्ण अन्य मतों का खण्डन करते हुए अपने सद्यः प्रकाशित गुरुत्वपूर्ण पुस्तक 'अमिट कालरेखा' में 'श्री शङ्कराचार्य परम्परा एवं संस्कृति रक्षक परिषद्' के अध्यक्ष एवं गहरे विद्वान् श्री परमेश्वर नाथ मिश्र जी ने श्री शङ्कर भगवत्पाद के आविर्भाव काल को विभिन्न तथा व्यापक प्रमाणों द्वारा खिस्तपूर्व 507 सुप्रतिष्ठित किया है।

स्वामी मुख्यानन्द पुरी
वेलूड़मठ

टिप्पणी : स्वामी मुख्यानन्द पुरी जी महाराज मूर्द्धन्य विद्वान् हैं। आचार्य शङ्कर एवं वेदान्त तथा सनातन धर्म पर आङ्ल भाषा में उनके 21 ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

ॐ श्री सद्गुरुदेवाय नमः

दिनांक 4.10.2001

प्रो० डॉ० के० जे० अजाबिया

50, श्री सद्गुरु नगर

रुरु सेक्सन रोड, जामनगर-361 006

गुजरात

दूरभाष : (0281) 540804

परम आदरणीय परमेश्वर जी

आप कुशल होंगे। आपकी ओर से 'अमिट कालरेखा–वितण्डावादी मत खण्डन' पुस्तक मिली। इस अभिनव प्रस्थान के लिये धन्यवाद और पुस्तक भेजने के लिये कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। दि० 24.9.2001 का पत्र 28.9. (2001) को मिला। ..... किसी भी क्रान्तिकारी संशोधन के साथ वाद-विवाद और मतवैलक्षण्य होते ही हैं। ग्रंथ में आपने चारु बहन का पूर्वपक्ष रूप पत्र भी प्रकट किया। इतनी नैतिक हिम्मत के लिये मान प्रकट हुआ। बहन जी रुष्ट और व्यथित दिखाई देती हैं। आवेश में कटु भाषा पर संयम नहीं रहा है। आपका उत्तरपक्ष रूप पत्र समुचित जवाब है। फिर भी आपसे विनती है कि वाद-प्रतिवाद में निरर्थक शक्ति-समय व्यय न करें। Ladies are generally emotional (महिलाएँ सामान्यतया भावुक होती हैं)। एक वयस्थ व्यक्ति के नाते सलाह लिखी है।

शुभाकांक्षी

के० जे० अ०

टिप्पणी : पत्र लेखक एक वरिष्ठ एवं लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् हैं। उनकी सलाह लेखक को मान्य है।

लेखक **श्री परमेश्वरनाथ मिश्र** का जन्म मार्गशीर्ष शुक्ल 6 संवत् 2016 में तत्कालीन वाराणसी जनपद के गोपीगंज थानान्तर्गत वराहीपुर ग्राम में शाण्डिल्य गोत्रीय मिश्र वंश में श्री विश्वनाथ मिश्र एवं श्रीमती शारदादेवी मिश्र नामक पिता-माता के गृह में हुआ था। प्रयाग विश्वविद्यालय तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षाएं प्राप्त करने के पश्चात् इन्होंने कलकत्ता उच्चन्यायालय में अधिवक्ता के रूप में कर्मक्षेत्र में पदार्पण किया सम्प्रति कलकत्ता उच्चन्यायालय के अतिरिक्त उच्चतम-न्यायालय भारत में भी अधिवक्ता के रूप में विधि व्यवसाय में संलग्न हैं।

धर्म, दर्शन, इतिहास का आपने गहन अध्ययन किया है। आपके पास विधि सम्बन्धी पुस्तकों के पुस्तकालय के अतिरिक्त धर्म, दर्शन, इतिहास एवं राजनीतिशास्त्र से सम्बन्धित पुस्तकों का एक विशाल ग्रन्थागार है जिसमें इन विषयों से सम्बन्धित कई सहस्त्र पुस्तकें एवं प्राचीन दुर्लभ ग्रन्थ समाहित हैं ।

इस पुस्तक को पढ़कर आप अनुभव करेंगे कि श्री मिश्रजी का विषयगत चिन्तन कितना गहन, व्यापक एवं पाण्डित्यपूर्ण है ।

लेखक की कृतियाँ

१. अमिट कालरेखा - अर्वाचीन मत खण्डन
२. अमिट कालरेखा - वितण्डावादी मत खण्डन
३. अमिट कालरेखा - सौरभ
४. अमिट कालरेखा - प्राचीनमत मण्डण — प्रकाश्य
५. आचार्य शंकर का व्यक्तित्व व कृतित्व
६. वर्णव्यवस्था का यथार्थरूप — प्रकाश्य
७. आजाद हिन्द फौज - जापान के आधिकारिक इतिहास के एक खण्ड का हिन्दी अनुवाद — प्रकाश्य

लेखक द्वारा सम्पादित ग्रन्थ

८. भगवत्पाद आदि शंकराचार्य संन्यास पञ्चविंशशती स्मृति ग्रन्थ

मुद्रक : लोकवाणी प्रिंटिंग प्रेस, लंगरटोली, पटना-4 दूरभाष : (0612) 674928